पंख-पंख आसमान

शान्ति सुमन

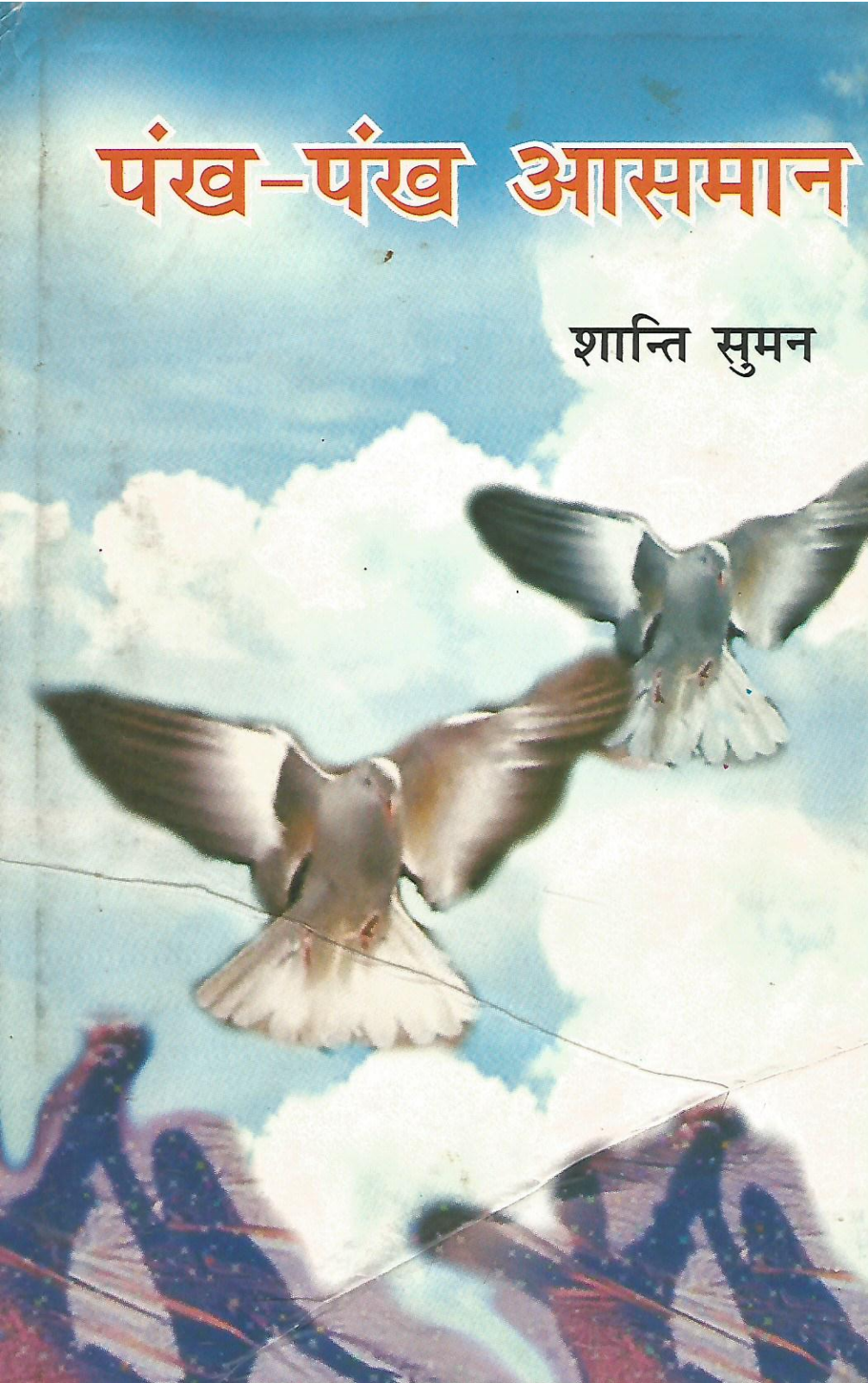

शान्ति सुमन राग और रूप ही लिखती रहीं, विराग और अरूप ने कभी उन्हें आकर्षित नहीं किया तो उसके पीछे उनकी गतिशील यथार्थ की समझ और विकासशील वैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि है । मिथिला की जनपदीय लोक चेतना और गेय संस्कार उनके गीतों में 'स्व-भाव' की तरह शुरू से ही विन्यस्त रहे हैं । उनमें माँ की लोरी और पहरुए की प्रभाती गेय रूप में सहज और प्रभाव के स्तर पर अक्सर अचूक रही है । कहीं-कहीं उत्सवधर्मी आयोजनों की स्नेहिल सामाजिकता भी । उनकी तीर की तरह नुकीली, अचूक गीति-प्रतिभा शुरू में अत्यंत चमकदार थी, आज भी है जिसका रचनात्मक विन्यास 'नवगीत' से लगाकर 'जनगीत' और 'जनवादी' गीत का परचम लहराने के लिए किया गया ।

बहरहाल मैं मानता हूँ कि शान्ति सुमन के भीतर गीत की संवेदना निश्छल है, अमिश्रित है । उनके भावावेश अलंकृत नहीं, स्वभावजन्य हैं । वे गीत रचने और उनकी सम्यक प्रस्तुति के लिये ही बनी हैं । संभव है, जन-आन्दोलनों का पीछा करने की प्रेरणा उन्हें उद्दाम युग चेतना से मिली हो ।

(शेष दूसरे फ्लैप पर)

पंख-पंख आसमान

(गीत)

पंख-पंख आसमान

(शांति सुमन के एक सौ एक चुने हुए गीत)

संचयन एवम् संपादन

नचिकेता

अभिधा प्रकाशन

I.S.B.N. 81-88584-18-5

मूल्य	:	125 रुपये
©	:	लेखकाधीन
प्रथम संस्करण	:	2004
प्रकाशक	:	अभिधा प्रकाशन
कार्यालय	:	रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर - 842002
दिल्ली सम्पर्क	:	1/6828 प्रताप गली, ईस्ट रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली - 110032
अक्षर-संयोजन	:	अजीत कुमार वर्मा
आवरण	:	अमिताभ राय
मुद्रक	:	बी० के० ऑफसेट, दिल्ली - 32

PANKH-PANKH AASMAN (Lyrics)

By **Shanti Suman**

यह गीत की कला है, शोर नहीं

कच्चे गीतों से अच्छा है
नारा एक लिखो
बन्धे हुए द्वीपों से बेहतर
धारा एक दिखो

गीत की ये पंक्तियाँ नवगीत से जनगीत तक की एक लम्बी दूरी तय करते हुए हिन्दी गीत-रचना का एक नया सौन्दर्यशास्त्र गढ़ने को कृतसंकल्प कवयित्री शान्ति सुमन का जनता की अदालत में दायर एक हलफनामा है । अपनी इस उद्घोषणा में शांति सुमन महज अपने रचनात्मक उद्देश्यों का ही उद्घाटन नहीं करती हैं, बल्कि मलार्मे की इस अभ्युक्ति को भी विखंडित करती प्रतीत होती हैं कि कविता शब्दों से बनती है, विचारों से नहीं । हालाँकि गीत को रचनाकार की निजी आत्माभिव्यक्ति का सर्वाधिक सघन और सबल माध्यम माना गया है जिसके केन्द्र में आत्मपरक अनुभूतियों, भाव-प्रवणता, रागात्मक तरलता और लयात्मक संगीतात्मकता उपस्थित होती है । जाहिर है कि गीत में विचारधारा की मौजूदगी उसकी अंतर्दृष्टि में मूल्य-चेतना की शक्ल में निहित होती है । फिर भी शांति सुमन को अपने गीतों में मानवीय करुणा, श्रृंगार और सौन्दर्यानुभूतियों के कच्चे गीत रचने के बनिस्पत विचार प्रधान नारा लिखना अधिक मुनासिब लगता है । उन्हें मध्यवर्ग की यथास्थितिवादी जीवन-स्थितियों में बंधकर रहने में भी विश्वास नहीं है, वह तो श्रम-सौन्दर्य की अविरल बहती नदी की उछलती-कूदती और नाचती-गाती धारा बनना चाहती हैं । यही वह प्रमुख संकेत-सूत्र है, जिसकी डोर पकड़कर शान्ति सुमन के गीतों की अंतरंग गहराइयों में उतरा जा सकता है । उतरना भी चाहिए ।

किसी भी रचनाकार के रचना-संसार का जायजा लेने के लिए उस कालखण्ड की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का एक संक्षिप्त परिचय पा लेना निहायत लाजमी होता है, जिसमें रहकर उस रचनाकार ने अपना रचना संघर्ष जारी रखा है । शांति सुमन के रचनाकार-व्यक्तित्व का निर्माण सातवें दशक के आरंभ में होता है । यह हिन्दी कविता का सबसे नाजुक दौर था । दरअसल भारतीय जन-मानस स्वतंत्रता-प्राप्ति के मोहभंग से गुजर रहा था । सारे सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन-मूल्य परिवर्तन की तरल अवस्था में थे । पुराने

मूल्य टूट रहे थे, उनके प्रति लोगों के मन में घोर अनिश्चय और अविश्वास का वातावरण था । अराजक अस्वीकार का बोलबाला था । नयी समाज-रचना की आकांक्षा थी, मगर स्वरूप स्पष्ट नहीं था । विकल्पहीनता की स्थिति थी । ऐसे समय में, हिन्दी कविता भी घोर अनिर्णय की स्थिति में थी । यह कभी अकविता बनती थी तो कभी युवा कविता । कविता पर व्यक्तिवाद, बुद्धिवाद और कलावाद की चौतरफा मार पड़ रही थी । कविता किसिम-किसिम के नाम और संज्ञा से विभूषित हो रही थी । अनिश्चय के इसी माहौल और अराजक वातावरण में नवगीत की जमीन जोती, कोड़ी और सींची जा रही थी । शांति सुमन ने भी अपनी रचनात्मक ऊर्जा की बदौलत एक-दो बिरार खींचने का प्रयत्न किया था–''मैंने मुख्यत: गीत रचना की है–नवगीत की रचना । आधुनिक गीतों के साथ नवता का प्रयोग ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की अपेक्षा तंत्र की भंगिमा से संबद्ध है । नयी कविता के समानान्तर ही मुझे नवगीत की स्थापना में आस्था है तथा नयी कविता की भाँति गीतों में भी नूतन दृष्टि एवं भावबोध अपनाए जाने के पक्ष में हूँ''-(ओ प्रतीक्षित) । स्पष्ट है कि शांति सुमन अपने गीत-सृजन के वास्ते उपयुक्त विधा का चयन करते समय जीवन-जगत को देखने, रचने और अभिव्यक्त करने की पद्धति और दृष्टि का विचारधारात्मक चुनाव ही नहीं करती हैं, वरन् नयी कविता के समानान्तर ही अपने गीतों के भावबोध और जीवन-दृष्टि के रूप में आधुनिकतावाद का प्रश्रय ग्रहण करती है ।

नयी कविता के समानान्तर ही नवगीत के भावबोध, जीवन दृष्टि और रचना दृष्टि में नवीनता का अन्वेषण करती हुई शांति सुमन के गीत आखिरकार आधुनिकतावादी कुण्ठा, संत्रास, निराशा, हताशा, महानगरीय यांत्रिकता, अस्तित्व संकट, मृत्युबोध, अजनबीपन, सम्बन्ध विघटन जैसे नकारात्मक जीवन-मूल्यों के चंगुल में फँस जाते हैं । मध्यवर्गीय जन-जीवन की त्रासदी, विसंगतियाँ, विडम्बनाएँ, यथास्थितिवाद, स्वार्थपरता और ढुलमुलपन शांति सुमन के इस दौर के गीतों (नवगीतों) की केन्द्रीय विषय-वस्तु रही है । अपनी विशेष ग्रहणशीलता के कारण शांति सुमन अपने गीतों में नयी ताजगी, सादगी और कलात्मक वस्तुपरकता के सृजन में संघर्षरत दिखलाई देती है–''भीड़ों की जिन्दगी के साथ लिए ऊब / नंगी खामोशी में चैन गई डूब / ताख पर धरे पड़े सारे एहसास / छाते रहे अपने घर फूस / हम चल रहे जुलूस में / हमारे पीछे एक जुलूस'' अथवा ''घुटते सम्बन्धों की / चर्चा बदनाम / धुएँ के छल्लों-सा / जीना नाकाम / मकड़ी के जालों-सी बिछी हुई उलझनें / सतही शर्तों से सब दबे हुए पहर / पत्थरों का शहर /.....सिर्फ औपचारिकता है / परिचय-प्रणाम / चाय पिला जोड़ें सब / चीनी के दाम / अंधी दीवारों से टकरा निरूपाय / लंगड़े सुधारों के कंपसते पहर / पत्थरों का शहर ।''

यह सही है कि शांति सुमन के पहले गीत-संग्रह 'ओ प्रतीक्षित', जिसका प्रकाशन वर्ष 1970 में हुआ है, के गीतों में मध्यवर्गीय निराशा बोध, दिशाहीनता, यथास्थितिवाद और ढुलमुलपन की मन:स्थिति का चित्रण हुआ है । ऊब, घुटन, टूटन, आत्मनिर्वासन, तनाव आदि के क्रूर शिकंजे में फँसे शहरी मनुष्यों की यांत्रिकता, हृदयहीनता, बनावटीपन, अजनबीपन और अमानवीय जीवन-स्थितियों को इनके गीतों में व्यापक अभिव्यक्ति मिली है । इसलिए इन गीतों में भावगत अमूर्त्तन के साथ-साथ नकारात्मक क्रियापदों, विशेषणों, उपमा, उपमानों, बिम्बों और प्रतीक-चित्रों का अनोखा आजाबघर निर्मित हुआ है । इसके लिए सिर्फ शांति सुमन को जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता । यह उस दौर के नवगीतों की मुख्य विषय-वस्तु थी । जहाँ यह सच है, वहीं यह भी सच है कि शांति सुमन के गीतों में तत्कालीन नवगीत के दमघोंटू पर्यावरण से शीघ्र निजात पाने की तीव्र छटपटाहट भी परिलक्षित होती है । उनकी रोयेंदार कुहासे से झंपी-झंपी आँखें सोनराई पातों पर ठहरी हुई भोर के आगमन को पहचान जाती हैं–''ठण्डे लोहे-सा एकांत / कनेरों-सी टुसियाई रात / सूरज ने छिड़के अबीर / दुहरे हैं कुहरी के गात / महकी हैं साँसें / सुधियाँ तपी-तपी / अलसायी पलकों पर ठहरी भोर / रोएँदार कुहासे से–/ आँखें झंपी-झंपी / सोनराई पातों पर ठहरी भोर ।''

ओमप्रकाश ग्रेवाल की दृष्टि में ''नवगीत के नाम से प्रचलित अधिकतर गैर जनवादी गीतों में कस्बों अथवा महानगरों में बसनेवाले मध्यवर्गीय व्यक्ति की बेबसी तथा पराजय-भावना अथवा उसकी कड़वाहट और खीझ ही प्राय: व्यक्त होती है । एक तरफ तो यहाँ हमें एक अकेला व्यक्ति खड़ा नजर आता है और दूसरी ओर उसे खौफजा रखनेवाला महानगरीय परिवेश, जिसमें अजनबी चेहरे हैं और मशीनें हैं, हड़बड़ी है और अस्थिरता है । इन गीतों में व्यक्त होनेवाली मन:स्थिति के अंतर्गत हमें लगता है कि हम एक ऐसे संसार में जी रहे हैं, जिसमें व्यक्ति अपनी मानवीय गरिमा खोकर नगण्य हो गया है और उनकी सभी मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लग गया है । दिशाहीन होकर वह अंधकार में भटक रहा है और कदम-कदम पर उसे अप्रत्याशित झटके लगते रहे हैं । अपने छूंछे पड़ गए पारंपरिक मूल्यों की खोखल से बाहर निकलते ही उसे यह समूचा संसार एक हास्यास्पद किन्तु भयभीत कर देनेवाला बेतुका नाटक नजर आने लगता है'' । हिन्दी नवगीत का जो वस्तुनिष्ठ मानचित्र ओम प्रकाश ग्रेवाल ने बनाया है, शांति सुमन के नवगीतों की वस्तुगत दुनिया इससे अलहदा नहीं है । इसके बावजूद वह अपने रचनाकार की आत्मालोचना करती है । कोल्हू के बैल की तरह एक घेरे में एक ही जगह लगातार घूमते रहना उन्हें मंजूर नहीं है । फलत: वह आत्मसंघर्ष करके अपने वैचारिक अंतर्विरोधों पर काबू पाने में कामयाब हो जाती हैं । उन के

गीतों से नकारात्मक क्रियापदों और विशेषणों का लोप होने लगता है तथा उनके बिम्ब-प्रतीक और मुहावरे भी सकारात्मक होने लगते हैं–''तुम आये / जैसे पेड़ों में पत्ते आये'' या ''याद तुम्हारी जब भी आये / ऐसे आये / सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये ।'' शांति सुमन के गीतों के बिम्बों और प्रतीकों के चुनाव में आया यह सकारात्मक परिवर्तन और प्रयोगशील नयापन जीवन-जगत को देखने, समझने और अभिव्यक्त करने की पद्धति और सोच में आई तब्दीली का द्योतक है ।

'परछाई टूटती' के गीतों तक आते-आते शांति सुमन के नवगीतों पर से मध्यवर्गीय निराशाबोध और ढुलमुलपन की काली परछाई भी शनैः-शनैः हटती दिखलाई देती है । 'ओ प्रतीक्षित' के गीतों में अवस्थित आधुनिकतावादी सम्बन्ध-विघटन की टूटन धीरे-धीरे सामाजिक-पारिवारिक रिश्तों की काव्यात्मक मिठास में घुलने लगती है । शिकवे-गिले आत्मीयता के साँचे में ढलकर एक नये मानवीय रिश्ते का संवेदनशील अनुमोदन बन जाते हैं–''एक चिड़िया / चोंच में लेकर उड़ी अनबन / भाभियों के खनकते / हाथों हिले कंगन / स्वागतम् गूँथी हथेली / धो गई शिकवा / मुट्ठियों में बन्द कर ली / नागकेसर हवा ।'' यह सार्थक क्रिया अकारण और अनायास ही घटित नहीं होती । इसके सामाजिक और ऐतिहासिक आधार हैं । निकोलाई अस्त्रोब्स्की ने कहा है कि काम करो, काम करने के दौरान ही तुम्हारा जुकाम ठीक हो जायेगा । शांति सुमन की चेतना का जुकाम भी श्रम-सौन्दर्य और उत्पादन-सम्बन्धों के ताप से ठीक हो जाता है । उन्हें फसलों की हरियाली में जीवन-संघर्ष का अक्स दिखलाई देने लगता है–''गेंहुंओं की पत्तियों पर / छपा सारा हाल / फुनगियों पर दूब की / मौसम चढ़ा इस साल / रंग हरे हो गए पीले / बात में मितवा / मुट्ठियों में बन्द कर ली / नागकेसर हवा ।''

''अजब-अजब भंगिमाएँ गढ़नेवाली' 'पोखर में डूबकियाँ लगाती हुई' उदास, दुखभरी, नीरस और अवसादों में डूबी 'गोरी-दुबली शाम' अब 'माँ की परछाई-सी' दीखने लगी है और दिन पिता की तरह, जिनके श्रमशील माथे से पसीने की बूँदे चूने लगी हैं । यह संवेदनशील श्रम-सौन्दर्य दरहकीकत, शांति सुमन के परवर्त्ती नवगीतों का वह प्रस्थान बिन्दु है, जिसका विकसित रूप ही उनके क्रांतिकारी जनगीतों (जनवादी गीतों) की आधारशिला है–''माँ की परछाई-सी लगती / गोरी-दुबली शाम / पिता सरीखे दिन के माथे चूने लगता घाम ।'' ऊपरी सतह से एक सौन्दर्य-बिम्ब दिखाई देनेवाले इस वृत्तांत में एक मध्यवर्गीय किसान की त्रासदी भी समाहित हो गई है । क्योंकि उसकी छोटी आमदनी भी उसे गुदगुदाती कम, दुखती ज्यादा है । उसे अपनी पूरी जिन्दगी मिट्टी के प्याले की तरह दरकी हुई महसूस होती है–''कहीं-कहीं दुखती है / घर की छोटी आमदनी / धुआँ, पहनते चौके बुनते केवल नागफनी / मिट्टी के प्याले-सी दरकी / उमर

हुई गुमनाम ।''

प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य गीत-रचना की सर्वाधिक उर्वर भूमि होते हैं । प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य को विषय-वस्तु बनाकर, कदाचित, दुनिया में सर्वाधिक गीत लिखे गए हैं । इसलिए इन विषयों पर गीत लिखना हर रचनाकार के निमित्त एक जोखिमं-भरी चुनौती होता है । प्राकृतिक परिवेश पर शांति सुमन ने बहुत ज्यादा गीत नहीं लिखे हैं । दरअसल उनका प्रकृति-प्रेम उनके गीतों की मूल्य-दृष्टि और टटके बिम्ब-विधान में ही समाहित है । लेकिन उनके सौन्दर्य-चित्र पाठकों को बरबस मोह लेते हैं । यह अलग बात है कि शांति सुमन के सौन्दर्य-चित्र छायावादी सौन्दर्य-चित्रों के मानिन्द वायवी और अतीन्द्रिय, उत्तर छायावाद की मांसल रूमानियत और नयी कविता के अमूर्त्त भाव-लोक का अलम्बरदार नहीं हैं । यह तो भारत की निम्नवर्गीय मजदूरिनों व मजदूरों के यथार्थवादी चित्र हैं, जिजीविषा और जीवन-संघर्ष की धमनभट्ठी में तपकर कुन्दन बन चुके वस्तुवादी सौन्दर्य-चित्र हैं–''यह भी हुआ भला / कथरी ओढ़े ताल-मखाना / चुनती शकुंतला /.....मुड़े हुए नाखून / ईख-सी गाँठदार उँगली / टूटी बेंट, जंग से लथपथ / खुरपी-सी पसली / बलुआही मिट्टी पहने / केसर का बाग जला / बीड़ी धुकती ऊँध रहीं / पथराई शीशम आँखें / लहठी-सना पसीना / मन में चुभती गर्म सलाखें / एक सूर्य रोटी पर औंधा / चाँद नून-सा गला ।'' इस गीत के सारे शब्द, बिम्ब, प्रतीक, मुहावरे श्रमिक जनता और किसान-जीवन से लिये गये हैं । इस गीत की लय-संरचना के साथ-साथ शब्द संयोजन में अद्‌भुत वस्तुपरकता है । एक श्रमशील और संघर्षशील ग्राम्य मजदूरिन का यह यथार्थवादी चित्र, असल में, एक अनोखी उपलब्धि है । बेहद संवेदनशील और अर्थपूर्ण भी ।

शांति सुमन ने दर्जनों उम्दा प्रेमगीत लिखे हैं । उनके हर प्रेमगीत का अलग सौंदर्य है, अलग अनुभूति है, अलग रंग है, अलग चमक है, अलग खुशबू है । कहीं तो वह परदेशी प्रियतम के विरह से ब्याकुल ग्राम्य युवती दिखाई देती है–''दुख रही है अब नदी की देह / बादल लौट आ /.....इंतजार हो गया विदेह/ बादल लौट आ /.....उग रहा है मौसमी संदेह / बादल लौट आ'', तो कहीं मीरा की 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई, जैसी क्रान्तिकारी / विद्रोही उद्‌घोषणा के समानान्तर मुक्त और स्वस्थ प्रणयाकांक्षा की उद्‌घोषणा के जरिये आधुनिक स्त्री-विमर्श को आगे बढ़ाती प्रतीत होती है, प्रेम पर लगे सामाजिक प्रतिबन्ध को नकारती हुई, पुरुष-सत्ता के वर्चस्व को चुनौती देती हुई–''एक हँसी / फेंककर इधर-उधर / दूबों को सहलाना प्यार से / पल्लू को स्वत: खिसकने दिया / माथ झुका / गंधिल आभार से / कसी हुई पसीजती हथेलियाँ / उमड़-घुमड़ गुजरीं बरसातें / हाथों में एक-दो मुंगफलियां / रंगारंग अंतरंग बातें / यादों को तह

करके रख लें हम / पार्कों में हुई मुलाकातें ।'' शांति सुमन का स्त्री-विमर्श अपने बासम्स से पूरे भूमण्डल को चाँप लेनेवाला कुण्ठित, आत्ममुग्ध और बड़बोला स्त्री-विमार्श नहीं है, न ही 'ब्रा बर्निंग मूवमेंट' जैसा खोखला, दिखावटी और फैशनेबुल आन्दोलनकारी शगल है । यह तो पुरुषसत्तात्मक समाज के द्वारा स्त्रियों के उन्मुक्त प्रेम के अधिकार पर लगाये गये अमानवीय प्रतिबंधों के विरुद्ध उठा खड़ा हुआ प्रतिरोधी स्वर है । इसलिए उनकी (शांति सुमन की) यह उद्दाम प्रेमाभिव्यक्ति कुण्ठारहित और उदात्त प्रेमाभिव्यक्ति है और मादक भी । इसकी मादकता में माँसलता है, लेकिन अश्लीलता नहीं है । उन्होंने परखनली में ताजमहल गढ़ दिया है, संगमर्मर के टुकड़ों से कुलाँचे भरता मृगछौना रच दिया है अथवा शरद पूर्णिमा को लता मंगेशकर का कंठ-स्वर दे दिया है । कहीं अपनी सद्य: सुहागिन बनी पुत्री की ओर महुआई आँखों से देखती और छोह-भरे स्वर में आगाह करती है कि ''धीरे पांव धरो / आज पितागृह धन्य हुआ है / मंत्र सदृश्य उचरो / तुम अम्मा के घर की देहरी / बाबूजी की शान / तुम भाभी के जूड़े का पिन / भैया की मुस्कान / पोर-पोर आँगन के / लाल महावर-सी निखरो'' तो कहीं एक प्रौढ़ भारतीय महिला की भांति अपने पोते-पोतियों / नाती-नतनियों की तुतली भाषा में लिखी पाती पर रीझती दृष्टिगोचर होती है–''बाहर की तो बात पता है / तुम घर की लिखना / जाते होंगे बूढ़े बाबा, सुबह रोज टहलने / दादी अम्मा तुलसी चौरा लगी साफ करने / सूरज कैसे उगता है / यह भी ज़रूर लिखना ।'' कहीं वह कच्चे प्रेम की अछूती गंध से मदमाती सद्य: युवा हुई तरूणी के लहालोट प्रेम के रंग से आकंठ सराबोर नजर आती है–''केसर रंग रंगा मन मेरा / सुआपंखिया शाम है / बड़े प्यार से सात रंग में / लिखा तुम्हारा नाम है /.....तन्मय चुम्बनसिक्त अधर पर / लिखा तुम्हारा नाम है ।'' वस्तुत: शांति सुमन के इन प्रेमगीतों में रागात्मक बोध का रंग बहुत ही गहरा और चटख है । उनके इन गीतों के अंतर्जगत में सावधानी के साथ प्रवेश करने पर हमें एक सम्पूर्ण भारतीय नारी का मुकम्मल चित्र देखने को मिल जाता है, जिसमें वह कभी दादी, माँ, बहन, बेटी, पत्नी, प्रेयसी यानी स्त्री के हर रूप में पूरी तन्मयता और रागात्मकता के साथ मौजूद मिलती हैं । रागात्मक तन्मयता इतनी गहरी कि गीत के हर शब्द से अनुभूति का बगूला उठता महसूस होता है ।

शांति सुमन स्वयं भी मानती है कि ''मेरे ये गीत भाव-भीगे क्षणों के, हल्के-फुलके और भारी भरकम क्षणों के गीत किसी सुग्गे के लिए सेमल के फूल नहीं हैं । इनमें मध्यवर्गीय भाव चेतनाओं का उतार चढ़ाव आपको यत्र-तत्र-सर्वत्र मिलेगा और धरती की बातों से धरती की गंध मिलते ही आप यह महसूस करेंगे कि इन गीतों में कुछ है, जो आपको बार-बार छू जाता है । इस छुवन के पीछे

इन नवगीतों में न केवल मध्यवर्गीय ऊब, कुंठा, घुटन, पीड़ा, विवशता शैथिल्य है, अपितु हृदय और बुद्धि का असामंजस्य, व्यवहार एवं आदर्श का वैषम्य एवं टुकड़े-टुकड़े होकर बँटे व्यक्ति के बाहरी दबाव भी हैं ।'' शांति सुमन की इस आत्मस्वीकृति में उनकी आत्मालोचना की बीज-वस्तुएँ भी अंतर्हित हैं, जो उन्हें अपनी गीत-रचना के अंतर्विरोधों को हल करने, आत्मसंघर्ष के जरिये इन अंतर्विरोधों पर काबू पाने में मदद करती हैं । तभी वह नवगीत-चेतना के कच्चे गीत लिखने की जगह विचार-प्रधान गीत-संवेदना के नाम लिखना अधिक समीचीन समझती हैं ।

'समग्र-चेतना' के नवगीत विशेषांक 'नवगीत और उसका युगबोध' में गीत (मंचगीत), नवगीत और जनगीत की सोच, समझ, पहचान और परख का एक खतरनाक घालमेल पैदा करने का यत्न किया गया है । गीतकार देवेन्द्र शर्मा इन्द्र मनोगतवादी ढंग से हिकारत भरे अंदाज में कहते हैं कि ''जनगीत, नवगीत और मंचगीत जैसे शब्दों से बेमानी वितण्डावाद फैलता है । जैसे सी०पी०आई०, सी०पी०एम० और सी०पी०आई०एम०एल० आदि राजनीतिक दल मूलत: एक ही हैं, वैसे ही गीत की उपर्युक्त संज्ञाएँ भी भिन्न होकर भी अभिन्न हैं ।'' देवेन्द्र शर्मा इन्द्र की इस बारीक, वस्तुपरक और वैज्ञानिक समझ के लिए उन्हें 'भारत-रत्न' की उपाधि दी जानी चाहिए । गीत, नवगीत और जनगीत को अभिन्न मानने का यह कुतर्क भी अजीब है । हालांकि इन्द्र जी को अपनी इस अवैज्ञानिक कुतर्क के खोखलेपन का अहसास है । तभी तो वह आगे कहते हैं कि ''जनगीत नाम देने की जरूरत उन गीतकारों को पड़ी, जिन्हें प्रगतिवादी कहलाने से परहेज था और जो नवगीत के द्वार पर प्रवेश वर्जित की पट्टिका टंगी देखकर हताश हो चुके थे ।.....एक ही गीत को बच्चन जी पढ़ें तो वह मंचगीत, शंभुनाथ सिंह पढ़ें तो नवगीत और रमेश रंजक पढ़ें तो जनगीत – यह एक कठहुज्जती नहीं है तो और क्या है ?'' तात्पर्य है कि जनगीतकार रमेश रंजक गीतकार भी नहीं हैं । किसी गीत-रचना को किसी व्यक्ति, दल और आलोचक विशेष से अनुज्ञा और स्वीकृति पाने के बाद ही नवगीत कहलाने का अधिकार मिलेगा । जनता की इस निर्णय में कोई भूमिका नहीं है । इस वैज्ञानिक समझ पर कौन फिदा नहीं होगा । वास्तविकता इसके भिन्न है । गीत, नवगीत और जनगीत की रचना दृष्टि (वर्गदृष्टि, विश्वदृष्टि और कलादृष्टि तीनों इसमें सम्मिलित हैं), रचनात्मक उद्देश्य, वैचारिक अंतर्वस्तु, प्रभावी अंतर्वस्तु और मूल्य-दृष्टि में गुणात्मक अन्तर होता है । केवल जन-साधारण की जीवन-स्थितियों के अनुगायन मात्र से ही कोई गीत-रचना जनगीत कहलाने का हकदार नहीं हो जाती, प्रत्युत रचनात्मक उद्देश्य, नीयत और प्रभावान्विति में व्यापक स्तर पर अंतर्दृष्टि के साथ जनपक्षधर होने की

अहमियत अक्षुण्ण होती है । एक नवगीतकार समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन के अंतर्विरोधों, विसंगतियों और विडम्बनाओं को उसकी नियति मानकर निष्क्रिय हो जाता है, यानी वह यथास्थितिवाद का पोषण करने लग जाता है । जबकि एक जनगीतकार सामाजिक जीवन के इन अंतर्विरोधों, विडम्बनाओं और विसंगतियों के नकारात्मक तत्त्वों की आलोचना करता है तथा जनता को इन अमानवीय परिस्थितियों को बदलकर अधिक मानवीय और समाजसापेक्ष बनाने के संघर्ष की खातिर प्रेरित, प्रोत्साहित और सक्रिय बनाने का प्रयास करता है । इसलिए मंचगीत, नवगीत और जनगीत अलग-अलग मानना नहीं, वरन् सबको एक मानना ही कठहुज्जती है ।

गीत (मंचगीत), नवगीत और जनगीत के बुनियादी फर्क के अनुशीलन, विश्लेषण और उद्‌घाटन के वास्ते एक ही गीतकार शान्ति सुमन के गीतों के अंतर्जगत का संक्षिप्त मुआयना किया जा सकता है । शान्ति सुमन के 'ओ प्रतीक्षित' में संकलित गीत शुद्ध रूप से नवगीत हैं, प्रभावी और वैचारिक दोनों अंतर्वस्तुओं के धरातल पर । इन्हें जनगीत का दर्जा नहीं दिया जा सकता । 'परछाई टूटती' के गीत भी मूलतः नवगीत ही हैं । यह बात दीगर है कि इन गीतों के भीतर से जनगीत के अंकुर भी फूटते दृष्टिगत होते हैं । लेकिन 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' में संकलित गीत पूर्णतः जनगीत हैं । इन्हें नवगीत मानना कठहुज्जती होगी । हालांकि 'सुलगते पसीने' और 'मौसम हुआ कबीर' के गीतों की बनावट, बुनावट और रचाव में काफी अन्तर है । इसे सरल, सपाट और इकहरे ढंग से नहीं समझा जा सकता है । क्योंकि गीत की रचना-प्रक्रिया सरल, सपाट और इकहरी नहीं होती, अपितु द्वन्द्वात्मक, जटिल, दुहरी, आड़ी, तिरछी, चक्रीय और गझिन होती है ।

'नयी कविता के समानान्तर ही नवगीत की स्थापना में आस्था' रखनेवाली और नयी कविता की भांति गीतों में भी नूतन दृष्टि और भावबोध के अपनाये जाने की पक्षधर शांति सुमन भी मानने लगती है कि जनगीत की रचना के लिए ''राजनीतिक विचारधारा को ग्रहण किया जाय ताकि कला के साथ विचारों का संतुलन बना रहे, क्योंकि जनवादी कला जीवन को ही अपना स्रोत मानती है और सीधे जीवन से प्राप्त अनुभवों और प्रेरणाओं को महत्व देती है ।.....जीवन की भूमिकाओं में गहरी पैठ की जरूरत पड़ती है, न कि अमूर्त्त सामान्यीकरण की'' (मौसम हुआ कबीर) । क्योंकि ''एक ओर तो ये जनवादी गीत (जनगीत) अर्धसामन्ती और अर्धऔपनिवेशिक समाजव्यवस्था और उसके शोषण-तंत्र को बेनकाब करते हैं, तो दूसरी ओर अपनी संघर्षजीवी रणनीति से उन चक्रव्यूहों से निकलने का रास्ता भी ढूंढते हैं'' इसलिए ''जनवादी गीतों की भाषा में मानवीय गरिमा की

अर्थसत्ता होती है । अब ये भूख लगने पर रोटी के लिए पथरा जाने के बजाय रोटी छीननेवालों के चेहरों पर आग बरसाने में सक्षम हैं । .....जनवादी गीत के शब्द लहू के कतरे हैं, संघर्ष से मिले हुए जन-साधारण की आँख, हाथ, पाँव, पीठ, पेट हैं । जनवादी गीतों की भाषा ने यह विश्वास दिया है कि मेहनतकश इंसान हर वक्त जिन्दा रहता है और बन्द मुट्ठियाँ जब खुलती हैं, तब कितनी ही स्याह रातों के सर्द अंधेरे समाप्त हो जाते हैं'' (सुलगते पसीने) ।

जनकवि कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह की दृष्टि में ''एक ओर अपनी जमीन से जुड़कर पूरी संवेदना के साथ रचना में उतर आना और दूसरी ओर पूरे जोश-खरोश के साथ समय में खड़ा होने के अहसास से रचना को कुछ आक्रामक मुहावरे से लैसकर वक्ती माहौल में जबरन सरगर्मी पैदा करना--ये दोनों बिलकुल भिन्न और परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं और कला के अनुशासन-वृत्त में एक यदि रचना की शक्ति के रूप में सामने आती है तो दूसरी उसकी दुर्बलता की ओर संकेत करती है-। यह अंतर-रेखा खींचना एक बहुत ही मुश्किल और जोखिम भरा काम है और यह निर्णय करना आसान नहीं, कि रचना कहाँ क्रांतिकारी सार को पकड़ने की कोशिश में फिसलकर सरलीकरण और / या रूपवाद की गिरफ्त में पड़ जाती है ।'' 'सुलगते पसीने' में संकलित शांति सुमन के गीतों की भाषा, मुहावरे और तेवर काफी आक्रामक आग उगलते-से, तीक्ष्ण, धारदार और मारक हैं । इन गीतों में वक्ती माहौल में सरगर्मी पैदा करने की कूबत भी है । इसके बावजूद इन्हें क्रांतिकारी सार को पकड़ने की कोशिश में फिसलकर सरलीकरण या रूपवाद की गिरफ्त में फँस जाना नहीं माना जा सकता । ये गीत, वस्तुत: नक्सलवादी किसान आंदोलन और उसकी क्रांतिकारी सामाजिक चेतना की उपज हैं । इसलिए ये गीत संघर्षशील जन-सामान्य को संघर्ष के निमित्त संगठित, उद्‌बोधित और प्रेरित करने में हथियार की तरह प्रयुक्त हुए हैं, वक्ती माहौल में जबरन सरगर्मी पैदा करने के उद्देश्य से नहीं--''अधभूखे पेटों में जबतक सुलगेगी चिनगारी / आदमखोरों की गफलत में भटकेगी लाचारी / साथी, तब तक निश्चय ही- / संघर्ष रहेगा जारी''/ अथवा ''नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात / यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात / हम गरीब मजदूर भले / हम किसान मजबूर भले / पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे / ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे ।'' शांति सुमन के ये गीत, वास्तव में गुलाब की पंखुड़ियों पर लिखी अग्नि-शलाका हैं, शबनम की लिपि में लिखी क्रान्ति की कारिका हैं ।

जॉर्ज सैण्ड के विचार से ''कला कोई ऐसा कौशल नहीं है जो जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों के ज्ञान के बिना अपने आप विकसित हो सके । इसके लिए जरूरी है कि कलाकार व्यापक अनुभव का संग्रह करे और सत्य की खोज में भाग

ले । उसे बहुत कुछ पचाने, बहुत ज्यादा प्यार करने तथा बहुत ज्यादा दुख झेलने और सहने की आवश्यकता है । इस दरम्यान पूरे मनोयोग से रचनात्मक कार्य में भी संलग्न रहना चाहिए । तलवार का प्रयोग करने से पहले चलाना सीखना चाहिए । एक कलाकार यदि कलाकार ही है तो वह पुंसत्वहीन प्राणी है, तात्पर्य यह है कि तब वह या तो अत्यंत साधारण स्तर का कलाकार होगा या फिर अतिवादी व्यक्ति होगा या पागल होगा ।'' शांति सुमन गीत-रचना के लिए जीवन-जगत की विस्तृत दुनिया से व्यापक अनुभवों का विपुल भण्डार एकत्र करती हैं । इसलिए उनका ग्रामीण परिवेश, प्रकृति प्रेम, किसान चेतना, लोक जीवन और लोक संस्कृति के तत्व उनके गीतों में घुलमिलकर मूल्य-चेतना की शक्ल धारण कर लेते हैं । उनकी इसी मौलिक विशेषता को ध्यान में रखकर मैनेजर पाण्डेय ने उन्हें ''नयी चेतना को लोक गीत के साँचे में ढालकर मानवीय करुणा, शोषित-पीड़ित जनता की एकता और सहानुभूति तथा यातना और पीड़ा के गीत'' लिखनेवाली कवयित्री माना है । इसलिए शांति सुमन के गीतों में मैथिली संस्कृति और लोकभाषा की मिठास और माधुरी है तो कमला, बागमती और कोसी की वेगवती धारा और उत्ताल तरंगों की क्षिप्रता और आवेग भी है, तालमखाने का झीना उजास है तो हिलिस मछली का लोहरैंधापन भी है जिससे उनके गीतों की प्रभावान्विति अत्यधिक धारदार और मारक हो जाती है-''थमो सुरुज महाराज / नयन काजर भर लें / बोयें पिया पसीना / फसल सगुन कर लें'' या ''धीरे-धीरे बहे पसीना / धीरे नदी बह रे / ललना रे, आधी रात गए / रनियाँ का मन कँहरे / इधर गजर का बोल / उधर मुनियां जनमें / ललना रे, आँखों रचे सरूप / कि हंसिया हाथ थमे / अगुआरे फूले गेंदा फूल / बीच-बीच अड़हुल रे / ललना रे, बेटी का भाग अमोल / बढ़े दो-दो कुल रे ।''

कमला प्रसाद के खयाल में इधर की कविता में लोक के शब्द उसी तरह आ रहे हैं, जिस तरह लोक जीवन और लोक आ रहा है । क्योंकि सच्चा साहित्य अपनी प्रकृति में लोकधर्मी होता है । वह न तो लोक जीवन की अवहेलना कर सकता है और न लोक-भाषा की अजस्र शक्ति को नजरअंदाज कर सकता है । शांति सुमन ने अपने गीतों में मैथिली लोकभाषा के शब्दों, लोकोक्तियों, छन्दों और धुनों को अंतर्दृष्टि के साथ कलात्मक ढंग से पिरोया है जिससे उनके गीतों की मौलिकता क्षतिग्रस्त और लहूलुहान होने के बजाय निखर गई है । उन्हें ज्ञात है कि लोक शब्दों का आशय केवल लोक भाषा और बोली के शब्दों से नहीं है, उन शब्दों से भी है, जो दैनन्दिन जीवन की आम बोलचाल में व्यवहृत होते हैं । शब्द-प्रयोग में वह इतनी सावधान दृष्टिगोचर होती हैं कि लोक-शब्द और मुहावरे उनके गीतों के अर्थानुषंग और अर्थ-सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, उन्हें अमूर्त्त होने से

बचाते हैं । उन्हें पता है कि कहीं ऐसा न हो कि लोक शब्दों की मधुरता में ऐसे और इतने अधिक शब्द एक साथ गीत में न आ जायें, जो अंचल के बाहर के पाठकों के सम्मुख सम्प्रेषण का संकट पैदा कर दें । वह गीत की मूल संवेदना और अनुभूति के ताप को महसूस करने से वंचित हो जाय ।

कविता का रचना-कर्म गद्य के रचना-कर्म से अलहदा होता है । उनके विचारों, अनुभूतियों, बिम्बों, प्रतीकों और मुहावरे में वैचारिक निबन्ध की तरह तार्किक अन्विति नहीं होती.। होनी भी नहीं चाहिए । शंभु गुप्त की निष्पत्ति है कि "कवि या कहानीकार को ज्यादा सचेत या चौकस नहीं होना चाहिए । थोड़ी-सी लापरवाही, थोड़ी-सी विस्मृति, थोड़ी-सी अबोधता या एक फिल्म का नाम लेकर कहूँ तो 'थोड़ी-सी बेवफाई' उसमें होनी चाहिए । यह ठीक है । यह हो सकती है, लेकिन इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि उसमें थोड़ी-सी सामाजिकता, थोड़ी-सी प्रतिबद्धता, थोड़ी-सी बैचेनी और थोड़ी-सी ईमानदारी भी हो ।" शांति सुमन में ये सारी विशेषताएँ हैं । ऐसा लगता है कि शंभु गुप्त ने ये सारी बातें शांति सुमन को लक्ष्य करके कही हैं । अभिप्राय है कि शांति सुमन के गीतों में थोड़ी-सी लापरवाही, थोड़ी-सी विस्मृति, थोड़ी-सी अबोधता और थोड़ी-सी बेवफाई के साथ-साथ समृद्ध सामाजिकता, निर्द्वन्द्व प्रतिबद्धता, भरपूर बेचैनी और व्यहारकुशल ईमानदारी है । यही कारण है कि लगभग तीस वर्ष पूर्व लिखा गया गीत भी आज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विसंगतियों, असमानताओं, विडम्बनाओं और अंतर्विरोधों का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते नजर आते हैं । एक निम्न वर्गीय (छोटे या मंझोले) किसान की आशा-आकांक्षा, परिस्थितियों और शोषक-शासक वर्ग की लूट-खसोट की भेंट चढ़ जाती है, इसका काव्यात्मक चित्रण यहाँ देखा जा सकता है-"काटेंगे खेत गई फरवरी / बीतेगी कैसे अब यह घड़ी / चलो, कहीं जा कीमत बूझें / हँसी और नींद हम खरीदें / चीजों के दाम जंगली / नदियों के शोर हो गए / रोशनियां बर्फ हो गईं / बादल कागज के कोर हो गए / सूखे और बाढ़ में गई / नदियों की मछलियाँ खोजें / हँसी और नींद हम खरीदें ।" इन पंक्तियों में अंतर्निहित अर्थ तक पहुँचने में कोई कष्ट नहीं होता । यथार्थ रागात्मक चेतना के साथ घुल-मिलकर व्यक्त हुआ है, जिसके अनुगूंजात्मक प्रभाव से इस गीत की लय-संरचना का बिखराव, छंद-विन्यास की असावधानी, संगीत-प्रवाह की रुकावट तथा तुक-संयोजन और अन्त्यानुप्रास की शिथिलता जैसी स्थूल त्रुटियाँ भी छिप-सी जाती हैं । वस्तुओं और मनुष्यों के घात-प्रतिघात से ही शांति सुमन के गीतों का लोक-संसार बना है । वह अपने गीतों की भाषा में स्वयं को इस कदर विलीन कर देती हैं कि उनकी उपस्थिति का आभास तक नहीं होता और भाषा का अपना स्वर, लय और

संगीत गीत की समस्त शिराओं में रक्त की भाँति प्रवाहित होने लगते हैं और उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँजने लगती है । पाब्लो नेरूदा के स्वर में सुर मिलाकर कहें तो यह वह कविता है, ''जिसकी तलाश हम करते हैं । तेजाब की तरह हाथों के भार से घिसी, पसीने और धुएँ से भीगी, वेला और पेशाब की गंध लिए, उन पेशों की विविध रंगों से रंगी, जिनसे हम जीवन-यापन करते हैं, कानून के अन्दर या बाहर । ऐसी कविता जो हमारे पहने गए कपड़ों की तरह अशुद्ध हो, दाल के धब्बे लगे, लज्जाजनक आचरण से गंदे हमारे शरीरों की तरह, हमारी झुर्रियों और रतजगों और सपनों, निरीक्षणों और भविष्यवाणियों, प्यार और नफरत की घोषणाओं, दृश्यावलियों और पशुओं, मुठभेड़ों के धक्कों, राजनीतिक प्रतिबद्धताओं, इन्कारों और संदेहों, समर्थनों और करों की तरह अशुद्ध ।''

आकारगत संक्षिप्तता गीत-रचना की अनिवार्य शर्त्त होती है । गीत में रचनाकार के पास स्थितियों के विवरणात्मक अनुशीलन और ब्योरेबार विश्लेषण में जाने का अवकाश (गुंजाइश) बहुत ही कम होता है । यहाँ वह स्थितियों और घटनाओं का संकेत भर देता है । इन संकेतों की डोर पकड़कर अर्थ और वास्तविकता की तह तक पहुँचना भावक और / या पाठक का काम होता है । जाहिर है कि गीत का अर्थ जितना प्रत्यक्ष होता है, उससे कहीं अधिक प्रच्छन्न या छिपा हुआ होता है, स्थितियों, घटनाओं और यथार्थ की पृष्ठभूमि में अंतर्निहित होता है । शांति सुमन के उपर्युक्त गीत में खरीफ फसल–धान की मुख्य फसल - की वजाय रबी फसल के तैयार होने की खुशी, उल्लास, आशा-आकांक्षा, सपने और उमंग के भावातिरेक के प्रति, सामान्य अवस्था में, अविश्वास-सा होने लगता है । लेकिन मिथिला जनपद की भौगोलिक स्थिति और जलवायु पर ध्यान दें तो मालूम हो जायेगा कि उक्त जनपद में खरीफ फसलें तो अक्सरहां बाढ़ के खूंखार उदर में समा जाती हैं, अतएव वहाँ के किसानों की जीविका रबी फसल पर ही निर्भर रहती है । भौगोलिक, प्राकृतिक और ऋत्विक परिस्थितियों के खुलासा से इस गीत के भावातिरेक की मार्मिकता अत्यधिक बढ़ जाती है, व्यावहारिक और विश्वसनीय हो जाती है । इसी प्रकार की संवेदना की अनुभूति ''चम्पा का पेड़ नहीं बाबा / महुआ के पेड़ लगाना'' जैसी गीत-रचना की पृष्ठभूमि में सक्रिय है । एक भूमिहीन किसान मजदूर के पास, जिसे अधिकांश समय मिहनत-मजदूरी करने के लिए काम भी मिलना संभव नहीं होता, वहाँ चम्पा के पेड़ के बनिस्पत महुआ के पेड़ की उपयोगिता और जरूरत अधिक होती है । मतलब कि शांति सुमन के गीतों के मर्म तक पहुँचने की खातिर उनके गीतों के सांस्कृतिक परिवेश, सामाजिक पृष्ठभूमि और भौगोलिक परिस्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करना नितांत लाजमी होगा अन्यथा मूलार्थ का मर्म पकड़ में आने से वंचित हो जायेगा ।

शांति सुमन के गीतों के अनुभवों का पाट बहुत ही चौड़ा है और जमीन उर्वर । इसके अनेक रंग और खुशबू हैं । इसमें रंग-बिरंगे पेड़-पौधे, लता-वनस्पतियाँ, फल-फूल, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, फसलें, मनुष्यों की जीवन-स्थितियों, जीवन-संघर्ष और मुक्ति-संघर्ष की अत्यंत ही रंगीन दुनिया हैं । सभी अपने रंग में पहचान और खुशबू के साथ विद्यमान हैं । कहने का आशय है कि शांति सुमन के गीतों का अनुभव-संसार अत्यंत ही वस्तुपरक और समृद्ध है जिसका कला से परहेज नहीं है, कलावाद का निषेध जरूर है ।

अन्त में शांति सुमन के गीतों का रचना-कौशल, कला-सौष्ठव, बनावट और बुनावट, प्रभावी और वैचारिक अंतर्वस्तु की द्वन्द्वात्मकता और तनाव की अनौपचारिक जाँच-पड़ताल के लिए उसके साथ एक संक्षिप्त अंतर्क्रिया की जा सकती है । उनका बहुत ही लोकप्रिय और कलात्मक गीत है, जिसकी रचना आज से लगभग बीस साल पहले सम्पन्न हुई थी–''थाली उतनी की उतनी ही / छोटी हो गयी रोटी / कहती बूढ़ी दादी मेरे गाँव की / सबसे बूढ़ी दादी मेरे गाँव की ।'' यह कलात्मक अभिव्यक्ति इस गीत का मुखड़ा यानी टेक की आरंभिक पंक्तियाँ हैं । इस गीत में कुल तीन बन्द हैं । हर बंद की अन्तरा में समान तुकांत या अन्त्यानुप्रासवाली दो पंक्तियों के बाद टेक की तीन पंक्तियाँ आती है । अंतरा की दो पंक्तियों में एक ही अनुभूति और विचार की सघनता को बढ़ाने की खातिर जीवन-स्थितियों, जीवन-संघर्षों और मुक्ति संघर्षों के सांकेतिक ब्योरे आते हैं जो गीत के अर्थ और भाव-संहति को क्रमानुसार विस्तार देते हैं । हर टेक की प्रथम पंक्तियों के जरिये ही पूरे गीत के संगीत-प्रवाह को नियंत्रित, लय-संगठन को अनुकूलित और अंत्यानुप्रास को अनुशासित किया जाता है । इसे टेक की 'उड़ान' भी कह सकते हैं । शेष दो पंक्तियाँ पुनरावृत्तियाँ हैं (गजल की भाषा में कहें तो रदीफ हैं), जो गीत के लयात्मक प्रवाह को गतिशील, प्रभविष्णु और आघातपूर्ण बनाती हैं । इस गीत के टेक में लोकगीत की कहन शैली और भंगिमा का कलात्मक इस्तेमाल किया गया है । इन पंक्तियों के सम्बोधनों और विशेषणों में मामूली परिवर्तन करके पूरे गीत की प्रभावान्विति और अर्थ-विस्तार को एक नयी अर्थच्छटा प्रदान की गई है, नई जीवनी और गति दी गई है । इस पद्धति की बदौलत ही शांति सुमन अपनी नयी और क्रांतिकारी सामाजिक चेतना को लोकगीत के संवेदनशील साँचे में ढालकर अभिव्यक्त करने में सफल हो जाती हैं ।

इस गीत में, यहाँ अनायास ही, कुछ ऐसे तत्व समाहित हो जाते हैं, जिसके सकारात्मक योग से इस गीत का रचना-विन्यास पूरा हो जाता है । वैचारिक अंतर्वस्तु के अंतर्गत भूख, गरीबी और उसके विरुद्ध संघर्ष है तथा आंतरिक संघटन और विकास की सहज परिणति इज्जत-आबरू, हक, हैसियत और आजादी की दीर्घकालीन लड़ाई में शामिल दादी, काकी, भौजी और बहना अर्थात् समाज का एक पूरा वर्ग है, जो अतीत से भविष्य तक की एक लम्बी यात्रा पूरी करता

है । साथ ही अंतिम जीत के संकल्प और विश्वास को ऊर्जस्वित करती है । अंतरा में आई 'भूख हुई अजगर-सी', 'अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे', 'पेट और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे', 'सिर से पाँवों तक की दिन-प्रति-दिन छोटी होती दूरी', 'लापरवाह व्यवस्था के खूँटे में बँधकर रहने की बेबसी', 'फेन-फूल-से उठे सपनों का राखों के ढेर में तब्दील होना', अंततः 'कर्ज उगाही, सूद और लहना' की अमानवीयता के खिलाफ दादी, काकी, भौजी और बहना का लामबन्द होकर 'मुठभेड़' में तब्दील हो जाना, वे स्थिति-चित्र हैं, जिनसे गीत के केन्द्रीय भावों को आवश्यक विस्तार और पुष्टि मिलती है तथा जीवन-संघर्ष को मुक्ति-संघर्ष में रूपान्तरण की वैज्ञानिक (कार्य-कारण-निदान की) सम्बन्धों की संपुष्टि हो जाती है । इससे गीत के अर्थ-विस्तार का फलक लगातार विस्तृत होता जाता है और विश्वसनीय भी । 'थाली उतनी की उतनी ही / छोटी हो गयी रोटी' तथा 'सिर से पांवों की दूरी अब / दिन-दिन होती छोटी' जैसे बिम्ब जो अपनी मौलिकता और अर्थपूर्ण सांकेतिकता के जरिये गीत के तात्कालिक प्रभाव में रूपांतरित कर देते हैं । इस दरम्यान उनके गीतों के लय-संयोजन, छंद-विन्यास, संगीत-प्रवाह और तुक (अन्त्यानुप्रास) संघटन में गतिरोध और शिथिलता भी आती है जिसे दादी–सबसे बूढ़ी दादी, काकी–सबसे सुन्नर काकी, नवकी भौजी–सबसे गोरी भौजी तथा रानी बहना–सबसे प्यारी बहना जैसे सम्बोधन और सम्बोधनों के दुहराव से उत्पन्न संवेदनशील आत्मीयता और गहरे रागात्मक बोध का जो वातावरण बनता है, वह गीत में आये गतिरोध और फाँक को ढ़ँक देता है । इन्हीं खूबियों के मद्देनजर कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह का मानना है कि उनके (शांति सुमन के) गीतों की कला में शोर नहीं है, न ही केवल उबाल और उद्‌गार है, वह बल्कि उन्हें एक विशिष्ट अर्थ और पहचान देकर मनुष्यों को हमबद्ध सारगर्भिता की ओर अग्रसर करने की सबसे विश्वसनीय प्रक्रिया है ।'' कलात्मक उद्देश्यों के इसी प्रभामण्डल की गिरफ्त में आकर उनके गीतों में उत्पन्न त्रुटियों को सामान्य पाठक और श्रोता पहचान-पकड़ की मनोदशा में ही नहीं रह पाता ।

इस प्रकार सामाजिक सरोकार से गहरे स्तर पर जुड़ी एक सफल गीत-रचना की–जनवाद की ठोस और खुरदुरी धरती पर खड़ी गीत-रचना की–रचना–प्रक्रिया पूरी होती है । यह एक कला है, जिसके पीछे कोई सचेत प्रयास नहीं है । जिसमें अर्थ-संघटन से लेकर रूप-विन्यास तक के सौष्ठव की सार्थक क्रिया बिलकुल ही सहज और स्वाभाविक ढंग से परवान चढ़ती है । यह रचनाकार के अपने समय और समाज से गहरे सरोकार तथा विधागत दायित्वबोध और संबद्ध प्रतिबद्धता का नतीजा है, सचेत प्रयास का नहीं । शांति सुमन के गीतों की यही शक्ति, सौन्दर्य और अर्थ-संकुल सार्थकता है । फिलहाल इतना ही ।

–नचिकेता

रचना-क्रम

गोरी दुबली शाम - 23
धो गई शिकवा - 24
सूर्य रोटी पर - 25
एक कतरा सुख - 26
सागर सुख - 27
सिहरे दो पल - 28
बादल लौट आ - 29
मोती की देह - 30
तुम्हारा नाम - 31
हरिजन जैसे दिन - 32
नाम और पते - 33
अंतरंग बातें - 34
यादों के खजूर - 35
चले आये दिन - 36
अलग मजमून - 37
अलग क्षण के किस्से - 38
काठ के सपने - 39
मन पर बोझ - 40
पूरी पृथ्वी माँ - 41
फूलवाली आँख - 42
मन के नयन - 43
बातों के अंदाज - 44
साँस पर कुहरा - 45
धूल की परतें - 46
सुरंग सुरमई - 47
रुकता नहीं प्यार - 48
बीत रहे दिन - 49
अजनबी पाहुन - 50
अजीब सिलसिले - 51
नीलाम हुआ मौसम - 52
नहाती हुई गंध - 53
धीरे पाँव धरो - 54
धूप-गीत की वंशी - 55
काँच का सपना - 56
घर की याद - 57
अनमनी घड़ी - 58
खिलना कनेर का - 59
बतियाते दिन - 60
उठा हुआ सिर - 61
फूले हैं बबूल - 62
घर की बात - 63
उजली धार - 64
मौके की बात - 65
सूर्य को प्रणाम - 66
अपनापन - 67
ठहरा हुआ बचपन - 68
गीत गाये देहरी - 69
आशीषों से भरी उँगलियाँ - 70

एकरस बात - 71
धरती का सुख - 72
भीतर-भीतर आग - 73
गाँव नहीं छोड़ा - 74
सर्दियों के दिन - 75
ठहरी भोर - 76
पत्थरों का शहर - 77
सोहर - 78
महुआ के पेड़ - 79
याद तुम्हारी - 80
राजनीति का सलीब - 81
सूर्यमुख शाम - 82
पेड़ - 83
राजकुँअर का गीत - 84
रानी का गीत - 85
रोटी का सवाल - 86
दाने कहाँ गए - 87
हौसले का गीत - 89
थमो सुरुज महाराज - 90
हम मुठभेड़ हुए - 91
बेटा माँगे चन्द्रमा - 92
मौसम हुआ कबीर - 93
अपनी ताकत - 94
आँधी चल रही है - 95
गवाही मत देना - 96
भूखों नहीं मरेंगे - 97
आँखों का सपना - 98
खुशियों का ताबीज - 99
नहीं माँगना भीख - 100
काँट के वन - 101
भात के सपने - 102
हल-सी जिन्दगी - 103
हमें खराब लगे - 104
बूने इरादे - 105
माँ का सपना - 106
कटाई का गीत - 107
बहती नदी - 108
कमीने मौसम - 109
बाढ़ की कथा - 110
बाँटो तू चिनगी - 111
जंगल के कानून - 112
क्रांति के बीज - 113
लोहे का गीत - 114
पंख-पंख आसमान - 115
धूप के हिस्से - 116
हँसियों का झरना - 117
बाँह में आकाश - 118
नदियाँ इंगुर की - 119
दिन आये - 120
हँसी तुम्हारी - 121
हवा आजकल - 122
हरियाली की पाँख - 123
मछली की तितलियाँ - 124

सुशांत

के

स्मृतिशेष

को

गोरी-दुबली शाम

माँ की परछाईं-सी लगती
गोरी-दुबली शाम
पिता सरीखे दिन के माथे
चूने लगता घाम

दरवाजे की साँकल
छाप अँगुलियों की ठहरी
भुनी हुई सूजी की मीठी
गंध लिखी देहरी
याद बहुत आते हैं
घर के परिचय और प्रणाम

उजले-पीले
कई-कई सन्दर्भ सलोने-से
तुतली जिद पर गुस्से लगते
काँच खिलौने के
नूपुर पहन बहन का हँसना
फिरना सारा गाम

कहीं-कहीं दुखती है
घर की छोटी आमदनी
धुआँ पहनते चौके बुनते
केवल नागफनी
मिट्टी के प्याले-सी
दरकी उमर हुई गुमनाम.

◆◆◆

धो गयी शिकवा

मुट्ठियों में बन्द कर ली
नागकेसर हवा

एक तिनका धूप
लिखती है भला-सा नाम
देखना फिर अतिथि आयेगा
तुम्हारे गाम
सर्दियों में नरम
हाथों से धरा कहवा

गेहुँओं की
पत्तियों पर छपा सारा हाल
फुनगियों पर दूबकी मौसम
चढ़ा इस साल
रंग हरे
हो गये पीले
बात में मितवा

एक चिड़िया
चोंच भर लेकर उड़ी अनबन
भाभियों के खनकते हाथों
हिले कंगन
स्वागतम् गूँथी हथेली
धो गयी शिकवा.

◆◆◆

सूर्य रोटी पर

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने
चुनती शकुंतला

कंधे तक डूबी
सुजनी की देह गड़े काँटे
कोड़े-से बरसे दिन
जमा करें किस-किस खाते
अँधियारी रतनार प्रतीक्षा
बुनती चन्द्रकला

मुड़े हुए नाखून
ईख-सी गाँठदार उँगली
टूटी बेंट, जंग से लथपथ
खुरपी-सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने
केसर का बाग जला

बीड़ी धुकती ऊँघ रहीं
पथराई शीशम आँखें
लहठी-सना पसीना
मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा
चाँद नून-सा गला.

◆◆◆

एक कतरा सुख

पन्नियों सा उड़ गया दिन
राख-सा मौसम
और अपनी आँधियों में कैद हैं हम-तुम

ज़िन्दगी को इस तरह
जीने में भी है एक मजा
आदमी खुद को गिरहकट-सा
दिये जाये सजा
एक ही तस्वीर से भरता गया अलबम

धुंध ऐसी
सोखती जाये बदन की ताजगी
कौन कह दे अजी छोड़ो
बुरी यह नाराजगी
कई टुकड़ों में बँटा आकाश का परचम

तालियों का शोर औ'
दम तोड़ते ये कहकहे
पाँव से लिपटे हुए सीमान्तकों में
यूँ दहे
एक कतरा सुख न था इन जंगलों में कम.

◆◆◆

सागर-सुख

सिरहाने इन्द्रधनुष टूट गया
खुली हुई हथेली है और कुछ वहाना
ओ रे ! सागर-सुख मैंने भी जाना

सुख जो घर में जन्मा दरवाजे पर खतम हुआ
आइना चटखते ही घुटने भर पानी में डूब गया
ऐसे में नाम धरूँ, बोलूँ या चुप होऊँ
पर, सब कुछ तो है अनजाना
ओरे ! सागर-सुख मैंने भी जाना

खिलते ही सूर्यमुखी गहनाई, मूक हुई
फसलें हस्ताक्षर की स्याही-सी सूख गईं
इतिहासों के परचे लिख आये
इतना तो सच है बतियाना
ओ रे ! सागर-सुख मैंने भी जाना

होने को होता है वह किन्हीं सवालों में
या जवाब देने की छूटी-सी जगहों में
जिधर दिखे उधर खुली आँखों का पानी
सुबह नहीं होती है
रात गुजर जाना
ओ रे ! सागर-सुख मैंने भी जाना.

◆◆◆

सिहरे दो पल

अभी नहीं
अभी नहीं बरसेगा बादल
काँपती शिराओं की बैजनी नदी
ठहरे मादल

होगा वह और जहाँ
आँगन-दीवारों पर जमती काई होगी
सुबह के मुँड़ेरे पर पंख खोल गौरैया
फिर बतियाई होगी
अभी नहीं
अभी नहीं दरकेगा काजल
मौसम की देह लगी हल्दी
फहरे आँचल

पेड़ की फुनगियों से
सूर्य बँधा
रोशनी किनारे की झील बनी
आँखों में, मन में, मंजरियों में
शेष हुई
मौसम की सनसनी
अभी नहीं
अभी नहीं गूँजेगी पायल
नींदों के पाँव लगी मेहँदी
सिहरे दो पल.

◆◆◆

बादल लौट आ

दुख रही है अब नदी की देह
बादल लौट आ

छू लिये हैं पाँव संझा के
सीपियों ने खोल अपने पंख
होंठ तक पहुँचे हुए अनुबंध के
सौंप डाले कई उजले शंख
हो गया है इन्तजार विदेह
बादल लौट आ

बह चली हैं बैजनी नदियाँ
खोलकर कत्थई हवा के पाल
लिखे गेरु से नयन के गीत
छपे कोंपल पर सुरभि के हाल
खोत के पतले हुए हैं रेह
बादल लौट आ

फूलते पीले पलाशों में
काँपते हैं खुशबुओं के चाव
रुकी धारों में कई दिन से
हौसले से कागजों की नाव
उग रहा है मौसमी संदेह
बादल लौट आ.

◆◆◆

मोती की देह

किस हाथ चुनोगी सीपी औ' शंख, मेघना
मोती की देह जो हुई

लहर टूट जाती हैं काँपते कगारों से
नये आसमान को तलाशती
मरी हुई तितली के तन-सा सागर-तट
अहिवातिन हवा होंठ ताकती
रेतों के जो होते मयूर-पंख, मेघना
हो जाती छुअन अनछुई

यहाँ से गुजरतीं फ्राक पहन ऋतुएँ
नावों पर शीशे चमकातीं
शब्द भर न सो पायीं जो आँखें
सूती कुरते-सी सूख जातीं
चूमे रंगे पाँव पानी का पंक, मेघना
पोर-पोर चुभोता सुई

झरते यहाँ सातरंग झरने
वासवी नदियाँ इंगुर की
जिद्दी-सी लड़की रोज तोड़ रख जाती
रुनझुन की बोर, चाँद नूपुर की
शीशमहल-सा कौंधे जलमयंक, मेघना
आँख-आँख अनलिखे गई.

◆◆◆

तुम्हारा नाम

केसर-रंग रंगा मन मेरा
सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में
लिखा तुम्हारा नाम है

सौ आमंत्रण बजे स्नेह के
बरसे रंग सुहाग के
यह कैसी कोमलता, आँखें
सजल सलज अनुराग से
थर-थर कँपते-से होंठों पर
लगता पूर्ण विराम है
और हथेली में फूलों से
लिखा तुम्हारा नाम है

खुलने लगे पृष्ठ सब पिछले
बीत गए क्षण-क्षण के
परत-दर-परत लगीं गमकने
पंख लगे दर्पण के
चन्दन-वन की छाँहें अलसीं
अंकित ललित ललाम है
तन्मय चुम्बनसिक्त अधर पर
लिखा तुम्हारा नाम है.

◆◆◆

हरिजन जैसे दिन

इस उजाड़ तक लाकर छोड़ गए
ऐसे तो ये दिन
लौट चलूँ उन मेहराबों में फिर
कभी नहीं मुमकिन

यहाँ हवा है तेज
बदन बेसुध हिलता है
आँख-आँख में फर्क-
नहीं, बेशक मिलता है
कुछ चौकन्नापन से जोड़ गए
घाव बड़े कमसिन

यह कपास-सी सुबह
रात खादी कुरते-सी
कटी फसल की महक-
लगे सब लिखे पते-सी
चाँदी की हँसुली यों तोड़ गए
हरिजन जैसे दिन

रेहन खेत लगे जैसे
बिक गए पसीने भी
मगर न खिंचे हुए तेवर
बिक सकते जीते जी
रद्दी कागज-से भले मरोड़ गए
ताने दे गिन-गिन.

◆◆◆

नाम और पते

लिख-लिखकर काट दिये
नाम और पते
रात एक स्वप्न-कलश
फूट गया, सुबह बीत गई सिसकते

बार-बार छूता वह
धूप-सा तुम्हारा मन
वर्षा के पहले अभिसार-सा
भिगोता तन
टूट गई टिकुली-से मौसम के हाशिए
धीरे-धीरे गये खिसकते

गालों पर
सूख गए आँसू के दाग
पिछले संदर्भ कई बुनते
हैं आग
थके हुए फूलों की खुशबू के गीत-से
आँखों में रहे सुलगते

अकेला
गुलाब का उगना चुपचाप
पंख-कटे पक्षी का जीवित
अहसास
बच्चों के हाथों में फूलों के बीज ये
चीखों से गए दहकते.

◆◆◆

अंतरंग बातें

हाथों में एक-दो मुँगफलियाँ
रंगारंग अंतरंग बातें
यादों में तह करके रख लें हम
पार्कों में हुई मुलाकातें

एक हँसी
फेंककर इधर-उधर
दूबों को सहलाना प्यार से
पल्लू को स्वत: खिसकने दिया
माथ झुका
गंधिल आभार से
कसी हुई पसीजतीं हथेलियाँ
उमड़-घुमड़ गुजरीं बरसातें

पिछले पन्ने
बरबस खुल गए
जिनमें बीतता समय थम गया
अनुबंधों को अनुमोदन देने
होंठों का
एक दस्तखत नया
उजले मन के कपास-से रेशे
सपनों के और सूत कातें.

◆◆◆

यादों के खज़ूर

तुम आये
जैसे पेड़ों में पत्ते आये

धूप खिली
मन-लता खिल गई
हवा पर्त्त-दर-पर्त्त
छिल गई
हाथ बढ़ाया जिधर
टूटकर छत्ते आये

रही-सही
पहचान खो गई
यहीं कहीं दोपहर
हो गई
यादों के खजूर
रस्ते-चौरस्ते आये

थोड़ी ठण्डक
ज्यादा सी-सी
मीठी-मीठी बात
सुई-सी
मौन मधुर
विश्वासों के गुलदस्ते आये.

◆◆◆

चले आये दिन

चले आये अकेले दिन बहाने से
लो, उड़ी खुशबू कि जय साबुन लगाने से

रोशनी का पुल
नदी में इत्र का झरना
देवदारों के वनों में
नथों का गिरना
चल रही पुरवा पहाड़ी धुन बजाने से
भागती बेटी कोई ऊँचे घराने से

प्यार पैबन्दों सिले
गठरी लिये कोई
फटी अंगिया में छिपाये
क्रोशिया कोई
चुप हुआ मौसम कि वर उबटन लगाने से
पकड़ ली जाये कोई महुआ चुराने से

प्यास भी जब तिलमिलाये
बूंद भर जल को
सूर्य और समुद्र में
घिर जाय मन पल को
चाँदनी की लतर काँपे गुनगुनाने से
हिले कंगन हाथ के ज्यों गुदगुदाने से.

◆◆◆

अलग मजमून

जब से आये हैं तब से
वैसे ही गले लगे हैं
कभी नहीं लगता पर वे
अपने हैं, बहुत सगे हैं

हिस्सेदार बहुत थे आए
चले गए सुविधा के
और अभी तक हमीं नहीं
पहचाने हाथ हवा के
अगल-बगल जानें कितने
ही चाकू तेज उगे हैं

छूटे नहीं छुड़ाए इतने
घाव पड़े पानी के
रोटी के मजमून अलग हैं
इस खींचातनी से
सरेआम नीलाम हुए
वादों के हाथ ठगे हैं

कितनी भारी होती है
भीगी गठरी गूदड़ की
कड़की ठण्डक में जोयी
हमने फलियाँ गूलर की
खेतों में गिलहरियों के
पाँवों पर बहुत भगे हैं.

◆◆◆

अलग क्षण के किस्से

पाँव को छू धूप अब धीरे
कमर तक हो गई

टहनियों पर भली लगती
गरम आहट गुनगुनी
पसरकर सोयी वहाँ पर
दोपहर की सनसनी
कंधों पर झुकी हुईं आँखें
लहर-सी बो गईं

सिसकती हुई आवाजें
पीतीं प्यालियाँ
बातों के टुकड़े जोड़तीं
कमरों की जालियाँ
परदों से ढँकी खिड़कियाँ
हथेली हो गईं

घंटों इस तरह दिखती हुई
अजन्ता याद आती
आँख मूँदे प्रशंसा पिए
उंगलियाँ थरथरातीं
अलग क्षण के अलग ये किस्से
नींद ही खो गई.

◆◆◆

काठ के सपने

काठ के सपने शहर आये
देखते जैसे कि डर आये

रह गई
कटके वफादारी
आज का दिन
सौ गुना भारी
आँख से
पहले अधर आये

तोड़ करके
रख गईं बातें
मोम-तिनकों-सी
नरम रातें
फूल थे
वादे बिखर आये

कह रहे हो
लो मैं गाती हूँ
धूप से तितली
बनाती हूँ
रास्ते में
याद घर आये.

◆◆◆

मन पर बोझ

जब से बढ़ा व्यापार
आदम बिक गया

माँ ने जहाँ पूरे थे चौके
झड़ आए मकड़ी के जाले
जिस घर में धुआँ-ही-धुआँ हो
रुक सकते कैसे उजाले
गोबर-लीपे घर-द्वार
शहर-क्षण रुक गया

बहन ने पूजी सँझवाती
भाभी ने काजलिया तीज
सड़कों की दोपहरी धूल
उतर गई मन पर बन खीज
ऋतु तनावों के पार
रंग असमय चुक गया

समय पर पहुँची नहीं
भैया को भेजी गई राखी
पानी पर तेल-सा पसरा क्षण
उड़ता मन जैसे वनपाखी
पत्नी का गीतिल प्यार
लिफाफों पर टिक गया.

◆◆◆

पूरी पृथ्वी माँ

रोटी-सी सच तेरी बातों को फिर करना याद
फिर से हुई उदास सोचकर तेरे बारे में

तू पूरी पृथ्वी हो माँ
सपनों में रोज सुलगती
ऊपर-ऊपर ठोस मगर
भीतर से बहुत धधकती
तेरे दुख जितने अपने थे चमकीले आजाद
कोई कह भी सका नहीं कुछ तेरे बारे में

आटा-आटा हाथ तेरे
जब रोटी रचनेवाले
कहाँ पाता था किसे मलिन हैं
होंठ वे हँसनेवाले
भीतर का भूकम्प आँख में बहुत दिनों के बाद
उतरा भी तो लोग सहज थे तेरे बारे में

तेरे शब्द बिना माने भी
कितनी दूर तलक जाते थे
अपनों से मिलने की खातिर
अपने से ही हट जाते थे
घर के पौधे की खातिर तू बनी स्वयं ही खाद
आँगन की परछाई कहती तेरे बारे में.

◆◆◆

फूलवाली आँख

तुम मिले तो बोझ है कम
बहुत हल्की पीठ की गठरी

उस नदी में पाँव धोती
हिरनियों-सी कुलाँचे भरती
गाँठें गिनती ईखों की
हवा को धूप-सी करती
अँधेरे के हाथ हैं नम
फूलवाली आँख जो ठहरी

फूटते धानों सरीखो
हम बढ़ें, बढ़ते गये
फुनगियों से फसल की
सपने बहुत कढ़ते गये
दिनों की बारिश गयी थम
तुम हँसी से हो गयी दुहरी

हाथ के घट्ठे कभी जो
चैन पाकर लगे दुखने
प्यार वे पाकर तुम्हारे
करीने से लगे कमने
खेत में उतरा हुआ मौसम
हँसी की हंसिनी उतरी.

◆◆◆

मन के नयन

अबके इस होली में कोई रक्त पलाश खिले
अनुबंधों की याद दिलाये, पीत कनेर हिले

घाट नहाती लड़की जैसे
डूबी हुई हवा
हुई अनमनी छाँहोंवाली
गुमसुम लाल जवा
राजमहल कैसे बन जाते, कैसे बने किले
पेड़ों की मुंडेर पर चिड़ियों के हैं पंख सिले

अक्षर-अक्षर छींट गया है
कोई सुबह उदासी
घूँट-घूँट पानी से तर
कर लेता रोटी वासी
चिन्ता तो होती है, पर किससे वह करे गिले
ईंच-ईंच बिक गया तपेसर, होली कहाँ जले

इस मौसम में फिर कोई
जादू ऐसा जनमे
फागुन-फागुन हो जाये दिन
परवत पीर कमे
मजबूरी है, वरना कोई कैसे नहीं मिले
रंग-रंग के मेले, मन के नयन नहीं बदले.

◆◆◆

बातों के अंदाज

आँचल में बँध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ आवारापन

शुरुआती के लिए रचेंगी ऋतुएँ अनुक्रम
रंग-विरंगे मुहावरे सिरजेंगी गीतम
बातों के अंदाज जहाँ ले जायें, घेरे–
आँखों में बँध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ बनजारापन

टूटेगा सन्दर्भ, उठेगा नहीं भीड़ से ऊपर
दबे पाँव गुजरेगा क्षण असहाय बनेगा बेपर
आमुख बनते रहो, गीत गुनते साँझ-सवेरे
साँसों में बँध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ बेचारापन

हँसी-हँसी में आज हुईं आँखें नम
तुम-सा होगा कौन अयश पाये, बोले कम
मेरे साँचे में ढल के देखो बहुतेरे
बातों में बँध जाओ रे दिन
छोड़-छोड़ अनजानापन.

❖ ❖ ❖

साँस पर कुहरा

बहुत गहरे
बहुत गहरे दर्द उठता है

आसमानों के तजुर्बे
बादलों की कन्दराएँ
और पानी की सतह से
चौमुखी उठतीं हवाएँ
पठारों पर
कहाँ कितना सूर्य झुकता है

फूल, पत्ती, जड़, तना है
साँस पर कुंहरा घना है
वेंत-वन की घाटियों में
बैठना-उठना मना है
जंगलों में
सुख कहाँ अहसान दुखता है

रोशनी की मौन भाषा
चाँद से झरती निराशा
आँधियों में लड़खड़ाता
पत्तियों का दम-दिलासा
पत्थरों की
नींद में कोई सुबकता है.

◆◆◆

धूल की परतें

करने लगी हैं दिल्लगी मुझसे
धूल की परतें

बँधे पाँवों में
सुबह से सफर मीलों के
बारजे, कमरे, घरों तक
चुभे कीलों से
झरने लगी है रेत आँखों से
बेवजह हँसते

लगते हैं दिन
लम्बे से पुराने मुहावरे
आँख मलते धुआँये खपरैल
खीजते खड़े
बाढ़-चढ़ी गंडक के हौसले
कम कहाँ करते

बँटे हुए नारों में
बाँटकर तमीज अपनी
कहाँ कितना सियें फटी
कमीज अपनी
सीमाएँ फैलीं, नींदों के
पँख गए झरते.

◆◆◆

सुरंग सुरमई

धूल की तरह उड़ी हवा
सपनों से नींद उड़ गई

धरती पर बड़ी भली लगती थीं
आशा से भरी हुई आँखें
प्रकृति और धूप वसंत की
जुड़ जातीं चिड़ियों की पाँखें
कागज गीला नहीं हुआ
थकी हुई राह मुड़ गई

दूर तलक आँखों में उसकी
सुगंध थी अगले मौसम की
रोते बच्चों की लाल पलकों-सी
हौसले अधिक उदासी कम थी
यादों में फूलती जवा
साँस में उदास जुड़ गई

बैठकर ट्रेनकी छतों पर
सपने लौटे हैं गाँवों में
यात्रा की थकान और खुशियाँ
कहाँ-कहाँ बँटी किन पड़ावों में
मन जैसे जलता हुआ तवा
अथाह एक सुरंग सुरमई.

◆◆◆

रुकता नहीं प्यार

तुमको कितना-कितना चाहा मैंने अपनी चाह में
सूरजमुखी खेत में झूमे, फसलें खड़ी गवाह में

रुकता नहीं प्यार
प्यार यह नदी, झील, पर्वत-सा
मीठा-मीठा लगे रात-दिन
शहद-घुले शर्वत-सा
लाज का गहना पहन तुम्हारी आँखें बसीं निगाह में

इन हाथों से रचीं रोटियाँ
प्यारी पकवानों-सी
लहू उगाती क्षण-क्षण
मुझमें ममता वरदानों-सी
धूप, हवा, पानी इस घर के घूमे भली सलाह में

अबके काट रहा जब मैं खुद
अपने हाथों फसलें
परस तुम्हारे हाथों का भी
कहता मिलकर हँस लें
पीला फूल कनेर एक खिलता है तो दिन-माह में

बाजूबंद नहीं हैं तो क्या
मुक्त हवा तो है
देने को अपने हिस्से में
रक्तजवा तो है
साथ-साथ जीते-मरते हैं, रहते इसी उछाह में.

◆◆◆

बीत रहे दिन

कृत्रिम समझौतों में बीत रहा दिन
झुकी-झुकी टहनी-सा दिन
उड़े-उड़े पातों-सा दिन

फाईल में जीवन की गंध सभी बंद
सुबह कहीं बंद
शाम कहीं बंद
अनमना-अनजाना-सा बीत रहा दिन
खाली मेजों-सा दिन
बासी बातों-सा दिन

भरमाता रह-रहकर अपना ही सपना
तन का यह तपना
मन का यह कँपना
आये-गये में ही बीत रहा दिन
उखड़े आलक्तक-सा दिन
अधभरे खातों-सा दिन

साधें चुक जातीं सीढ़ियाँ उतरते
कहीं वादे बिखरते
और इरादे बदलते
सूने चौराहे-सा बीत रहा दिन
टूटी प्याली-सा दिन
झड़े-झड़े गातों-सा दिन.

◆◆◆

अजनबी पाहुन

विदा हो गए
पीले पन्नों भरे दिन
जुदा हो गए

जंगलों में
सीटियाँ गूँजने लगीं
अलविदा, आवाज आँखें
मूँदने लगी
गुलदान
फूलों पर फिदा हो गए

यात्राओं पर गए
पाखी मुड़े तक नहीं
रूमाल लिए हाथों में
कँपकँपी हुई
मौसम के
नाम तयशुदा हो गए

जब से आये
तब से ऐसे अलग खड़े
अजनबी पाहुन ये
सुख हुए बड़े
उलाहने
जैसे मसविदा हो गए.

◆◆◆

अजीब सिलसिले

दिन थके कहार-सा हुआ
काटना पहाड़-सा हुआ

कई सिलसिले अजीब-से
देखना उन्हें करीब से
पंख लगा वायदे उड़े
टँगे रहे हम सलीब-से
धूप आबनूस-सी हुई
दिन किसी दयार-सा हुआ

हाथों के हौसले पसीजते
अँधेरे में आँखें मींचते
कहाँ से उठे, कहाँ गिरे
टकराके खिड़की-दहलीज से
धूल चुभोती हुई सुई
दिन घर-दीवार-सा हुआ

कहाँ आ गए यही सोचते
मकड़ी के जालों को नोचते
भीड़ में, अकेले में, सरेआम
आदमी जुबानों को बेचते
घटनाएँ हुईं अनहुई
दिन तो अखबार-सा हुआ.

◆◆◆

नीलाम हुआ मौसम

टिनही थाली रखी
आध टुक रोटी का स्वाद हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया

हाथों से पेटों तक बुने हुए जाले
अपने घर नागफनी रोकती उजाले
चुभते सन्दर्भ बहुत
मूल नहीं जैसे अनुवाद हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया

गोबर से लिपी हुई घर की उदासी
भूख ने लिखा है हर सपना बासी
नीलाम हुआ मौसम--
कथाओं से कटता संवाद हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया

खुद से भी बातचीत करना होता मना
बासी अखबार पर है भविष्य देखना
खण्ड-खण्ड बिखरा--
जैसे-तैसे का अनुभाग हो गया
चन्द्रमा विवाद हो गया.

◆◆◆

नहाती हुई गंध

नींद में भी सुनाई पड़े
एक हँसी खिलखिलाती हुई
कत्थई गोद के फूल सी
गंध भीनी नहाती हुई

आँख खुलते ही सूरज उगे
नील झीने चंदोवे तले
एक सुकुमार टहनी जुही
लोरियों के सहारे हिले
एक नदी घर में उगती लगे
तोतली जिद बहाती हुई

पैर की छाप घर में लिखी
जलकमल ज्यों गिरे डाल से
दूधिया दाँत ऐसे लगे
दो सितारे ढँके जाल से
या हरसिंगार झरते हुए
दूर लौ झिलमिलाती हुई

सरसों की अंकुराती देह
गीत-धुली दो मीन आँखें
नेह के बोल बोलें, खुले
चिड़ियों-सी बाँहों की पाँखें
इस तरह लोकधुन में पगी
नींद भी गुनगुनाती हुई.

◆◆◆

धीरे पाँव धरो

धीरे पाँव धरो
आज पिता-गृह धन्य हुआ है
मंत्र सदृश उचरो

तू अम्मा के घर की देहरी
बाबूजी की शान
तू भाभी के जूड़े का पिन
भैया की मुस्कान
पोर-पोर आँगन के
लाल महावर-सी निखरो
धीरे पाँव धरो

तेरी हँसी पहनकर गाये
फूलों की टहनी
तू अन्तर की भाषा में
सपनों के सूत बनी
आँचल भरकर दूब-धान
सिन्दूरी नमन करो
धीरे पाँव धरो

जीवन की अल्पना रचेंगे
सुख के मीन-मयूर
लहठीवाले हाथ रचेंगे
माथे का सिन्दूर
पितरों के गौरी-गणेश को
पूजो, वरण करो
धीरे पाँव धरो. ◆◆◆

धूप-गीत की वंशी

जाने कितनी बार जगाया
सुबह-सुबह दर्पण ने

महुआ हवा नींद भर लाती
माँ की थपकी-सी मन भाती
उजले धूप-गीत की वंशी
छेड़ी तान किरण ने
जाने कितनी बार हँसाया
सुबह-सुबह दर्पण ने

गिनती करती रहीं उँगलियाँ
बातचीत में फँसीं मछलियाँ
होते भोर बुलावा भेजा
कलियों को कानन ने
'मिस' की तरह आज फिर डाँटा
सुबह-सुबह दर्पण ने

माँ की बाँह पकड़कर सोना
सपनों में भी जादू-टोना
बाबूजी को कहा-मनाया
अक्सर भोलेपन ने
गोल किया मुँह टाफी पर भी
सुबह-सुबह दर्पण ने.

◆◆◆

काँच का सपना

पड़ी औंधी नाव
रेती को पसीना छूटता है
इस सदी में कहाँ कोई
घर हमारा पूछता है

दस्तकें देती हवा
ठहरी हुई चौगान पर
मन हमारा भी ढहा है
कुछ इसी अरमान पर
देख भाई
काँच का सपना
कहाँ से टूटता है

पहन सारी चुप्पियाँ
घिरने लगे हैं कूल
कुछ बताए बिना ही
झरने लगे हैं फूल
धुने जाने के लिए ही
मन रुई का फूटता है

शिराओं में बज रहे जो
रात-दिन के शंख
देखते बच्चे किताबों में
बया के पंख
कौन यह
हँसते हुए
सुख का खजाना लूटता है.

◆◆◆

घर की याद

जब कभी कोई बच्ची
वर्षा में नहाती है
घर की याद आती है

डाल पकड़ तोड़ना
गुच्छे कनेर के
होंठ दबी हँसी
पूछना घेर के
हर बार गंध नहायी हवा
इस जगह लाती है

जैसे रख दी गई
रंगों के घर में
एक अबूझ प्यार
समा गया हो नजर में
होते ही सुबह साँसें
लाल ईंट-सी पकाती हैं

इमामी की महक से
भरी हुई दुपहरी
भुनी हुई सूजी की
गंध लिखी देहरी
गेरु से रंग आँखें
इस घाट पर लजाती हैं
घर की याद आती है.

◆◆◆

अनमनी घड़ी

यादें होतीं भली घर की
उदासी जैसे सिहरते पाँव पानी के
खुशी जैसे इत्र की शीशी कहीं ढरकी

सुबह रची माथे पर
माँ के आशीषों-सी
दुपहरी पिता की प्रतीक्षा
में कासों-सी
बदल जाती अनमनी घड़ी भी शहर की

जिद में डूबी खनकती
हँसी चौदह साल की
दुख कपूर-से जलते
आँख में सवाल की
जीने को चिट्ठी, मुहर लगी कानपुर की

बाहर की धूल झाड़
खिड़की में खड़ा होना
अपनी परछाई का
खुद से बड़ा होना
तीन दिनों की चुप्पी दहकती दफ्तर की.

◆◆◆

खिलना कनेर का

चाँदी की थाली में दूब-धान-से
याद-घर लगते उजले मखान-से

जले हुए इंधन, खाली दियासलाई
भाभी के अनबाँधे केश औ' कलाई
धुआँ भरे सँवलाए कमरों के कोने
बाँट रहे हाथ-हाथ खीर औ' मलाई
दूरागत गीतों की सुघर तान-से

लाल फूल गेंदा के बहिना की टिकुली
हल्दी के हाथ लिए ऑगन से निकली
दो महीने बाद मिली भैया की चिट्ठी
लगा डाल छूते ही उड़ी लाल तितली
हँसी बनी शोर गूँजती विहान-से

द्वार के कुएँ पर खिलना कनेर का
हरसिंगार चुनना वह भोर-भोर का
कसमों की डोर बँधी प्रीति का उजास
तपना हथेलियों पर अमलतास का
रंगों की छाप देह-मन-दलान-से
याद-घर लगते उजले मखान-से.

◆◆◆

बतियाते दिन

अलसाने लगे फागुन के दिन
फागुन के

धूप-छंद रचकर सिरहाने
रात लगी मंजीर बजाने
महुआने लगे पातों के तन
फागुन के

अंग-अंग रससिक्त कथाएँ
मोर पंख-सी खुली हवाएँ
बतियाने लगे हैं भर-भर दिन
फागुन के

लगा गंध की नदी नहाके
आँख खुली पाजेब बजाके
सुलझाने लगे जूड़े-से मन
फागुन के

झरने लगे गंध के झरने
भीगी देह आँख-मन करने
दुहराने लगे सब पिछले क्षण
फागुन के

ऐपन लगी महकती सुबहें
अमलतास की कथा क्या कहें
सगुनाने लगे शर-बिंधे सपन
फागुन के.

◆◆◆

उठा हुआ सिर

अरी जिन्दगी
पानी में तुम बना रही घर है
बाहर-बाहर है वसंत, पर
भीतर पतझर है

जहाँ कहीं भी जली रोशनी
तुमको हुआ पता
पर अपने टुकड़ों को कैसे
जोड़ें तुम्हीं बता
टूटी हुई छतों पर
उड़ता सपनों का पर है

शब्द जोड़ते रहे
गए ढहते ही सबके माने
एक आग जलती ही रहती
सिरहाने-पैताने
भीग रही वर्षा में
कच्ची हँसी बहुत बेघर है

जड़ी हुई गहनों पर
भीगी आँखों की छापें
इस जंगल में तेज हवा
तुम कहाँ-कहाँ नापे
इतना तो तय है
कि तुम्हारा उठा हुआ सिर है.

◆◆◆

फूलें हैं बबूल

रोपे तो शीशम के पेड़ गये
फूले हैं यहाँ पर बबूल

उगते ही सूरज के शोर भरी
बजती कारखाने की सीटी
पेट छीनता
नींद आँखों की
पाँव-तले पत्थर की मिट्टी
लोहे के सूर्य और चाँद हुए
दूबधान नहीं हैं कबूल

दुपहर छाते धूल के बादल
घंटी के पहले भूख की मनाही
सड़कों पर बिछी हुईं
ईंटों की किरचें
बहियों में
नहीं दर्ज होती तबाही
आग खोजती है हौसले नये
जहाजों के हिलते मस्तूल

और बड़ी हो गईं छायाएँ
दुबली रोशनियों की देह
पथराई प्रतीक्षा ले पुतलियाँ
रुई-से उड़ते हैं दुखियारे नेह
जीने की शर्त और साँस के लिए
जीवन में मरन सौ फिजूल.

◆◆◆

घर की बात

बाहर की तो बात पता है
तुम घर की लिखना

जाते होंगे बूढ़े बाबा सुबह रोज टहलने
दादी अम्मा तुलसी चौरा लगी साफ करने
सूरज कैसे उगता है
यह भी जरूर लिखना

रोशन आनाकानी करता है हरदम उठने में
माँ का समय चला जाता उसका बस्ता करने में
फिर वह कैसे रहता है
इतनी बातें लिखना

घर में आना बंद हो गया होगा टाफी-वाफी
बिस्कुट का रहना घर में होता होगा नाकाफी
स्याही-सनी हुई उँगली का
हालचाल लिखना

अभी नहीं सूखी होंगी दीवारों की लतरें
छोटे घर में आनेवाले लोग कहाँ ठहरें
मुश्किल से ही होता है
फिर गुजर-बसर लिखना.

◆◆◆

उजली धार

यह नया दिन उगा
भीगी आँख में
बच्चे की हँसी की तरह

हँसी जैसे
सूखते कपड़े छतों पर
लाल स्याही ढरकती
पूरे खतों पर
धान-बाली
फूल जाये बात में
नदी की उजली धार की तरह

थरथराते
पुलिन की गवाह एक चिड़िया
दूर जाकर बहुत फिर से
लौटता दरिया
फूल होती पँखुरी की
बाँह में
बजती खुशबू प्यार की तरह

बात कि
प्यासी नदी सूखी न थी
और पछुवा चैन की
भूखी न थी
धूप, फूल
गंधों के गाँव में
दो-तीन सपने हजार की तरह.

◆◆◆

मौके की बात

क्रोशिया काढ़ते दिन बीते
अब तो चूल्हे-चौके की बात

धुओं से भर जाती
घर की छत सुबह-सुबह
किलक और ठुनक दे
मन की सब बातें कह
कोहबर के पुष्प-रेणु रीते
अब तो बस सब मौके की बात

बेटी सयानी से
बूढ़ी-सी सास तक
चर्चा सरनाम हुई
नैहर की आस तक
मूल्यहीन मूल्य सभी जीते
आमद-खर्चों में धोखे की बात

अब तेरे नाम नहीं
शाम का हरेक दर्द
डायरी लिखती है
गीतों के साथ कर्ज
अब होते नहीं जीने के कई सुभीते
पानी पर उठते फोके की बात.

◆◆◆

सूर्य को प्रणाम

हाथ दोनों जोड़ते हुए
सूर्य को प्रणाम हम करें

एक सूर्य लाने गए बाबा
आज तक लौटकर नहीं आए
एक बीज लाने गए काका
पेड़ की तरह रहे अनगाए
छोटी इच्छाएँ हिलकोरते हुए
धरा को प्रणाम हम करें

चक्कियाँ चलाती अपनी माँ
आटा-आटा होकर रह गयीं
जोहती रहीं कुछ उनकी आँखें
काठ के बुरादे-सी ढह गयीं
आओ, अपना पथ मोड़ते हुए
नदी को प्रणाम हम करें

धुआँ-धुआँ हुए सुलगे भाई
मौसम को आग बाँटते
अपने हाथों अपने को गढ़ने
अँधेरे के गाछ काटते
झरने की तरह पर्वत फोड़ते हुए
फूल को प्रणाम हम करें.

◆◆◆

अपनापन

यह अपनापन प्यार तुम्हारा
मुझको जीने का सुख देता

कटे धान के खेतों मे जब
चिड़िया दाना चुगने आती
ओसायी धूपों से अपनी
सहज प्रार्थनाएँ बुन जाती
आँगन में हर बार तुम्हारा
गंध-परस हर सब दुख लेता

बागों में जब बौर फूटते
कलियों की आँखों में पानी
बेलपत्र पर चंदन जैसे
लगे अपूरव तुतली बानी
तुम-सा ही घर-बार तुम्हारा
फँसी नाव को हरदम खेता

तुमसे ही तुमको ले-देकर
नयन नेह के झरनोंवाले
कोई सगुन उचारे रह-रह
हाथों जुड़े मोतियोंवाले
सरबस मानिक-लाल तुम्हारा
बदले मन के मोती लेता.

◆◆◆

ठहरा हुआ बचपन

सघन छायाकार सड़कें
काँपता है भोर का कुहरा
मन अपना एक पल को भी
नहीं अपने पास तब ठहरा

याद आये पिता–
अपना झील-सा ठहरा हुआ बचपन
मूँगों की फलियाँ–
पहने गाये उजले-हरे खेत-वन
एक उजला स्वप्न कौंधा
रोशनी का चौतरफ पहरा

बिन धुआँते छप्परों के घर
आँख में आँजे हुए अगहन
याद आये.सरसराते हवा में
हिलते हुए-से ईख जैसे दिन
मछलियों की आँख में चमका
पोखरों का अतल जल गहरा

घुंघराले केश में दमकते
कसकर बाँधे हुए रिबन
याद आया लड़की का ताल में
उझकना
फिर देखना दर्पण
यादों के मेले में एक मन फँसा
कभी परचम बना फहरा.

◆◆◆

गीत गाये देहरी

कोमल पाँव धरो
फूटे चन्दन की गंध
गीत गाये देहरी

कई जनम के पुण्य आज
फूले पुरखों के
अँगड़ाई ले
जागे-हैं सपने बरखों के
अरुणिम नयन वरो
ऋचा-स्वर गूँजें मन्द
द्वार हिरना ठहरी

सौ-सौ कमल-ताल में
जैसे पंखुड़ियाँ खोले
लहठीवाले हाथ ये जब
परिचय-प्रणाम घोले
मंत्र-मुग्ध करो
बोये धूप-हवा, मकरंद
फुनगियों से उतरी

जीवन भर की पूँजी ये
क्षण सुख के पहने
रचे नेह सुकुमार
सुहागिन तेरे गहने
सीपी-सपन भरो
मुखर घर-आँगन छंद
जैसे वर्षा झहरी.

◆◆◆

आशीषों से भरी उँगलियाँ

मुझमें अपनापन बोता है
साँझ-सकारे यह मेरा घर

उगते ही सूरज के
रोशनदान बाँटते ढेर उजाले
धूपों के परदे में खिल-खिल
उठते हैं खिड़की के जाले
चिड़ियों का जैसे खोंता है
झिन-झिन बजता है कोई स्वर

एक हँसी आँगन से उठती
और फैल जाती तारों पर
मन की सारी बात लिखी हो
जैसे उजली दीवारों पर
एक प्यार सब कुछ होता है
जिससे डरते हैं सारे डर

दरवाजे की साँकल माँ की
आशीषों से भरी उँगलियाँ
पिता कि जैसे बाग-फूटती
एक स्वप्न में सौ-सौ कलियाँ
जहाँ परायापन रोता है
लुक-छिप खुशी बाँटता मन भर.

◆◆◆

एकरस बात

वही एकरस बात
झगड़ती इच्छाएँ
रिसता और पिसता दिन

शाम तक पी जाना भोर की उमंगों को
धो देना बेवक्त जीवन के रंगों को
वही बेबस रात
अनियमित दिनचर्या
प्रीति की दुल्हन कमसिन

दुपहर को बैठा कोई कागा मुँडेर
लगा देतां अनचाही खुशियों का ढेर
वही नम बरसात
खुशफहमी के आसार
फटी कमीज पर आलपिन

नकली चेहरों को जीती सड़कें
कर्जों के सूरज उग आते तड़के
वही निर्मम घात
उतरती-चढ़ती जिम्मेवारी
बेकार मक्खियों की भिन-भिन.

◆◆◆

धरती का सुख

कटे धान के खेतों में
फिर-फिर आयी चिड़िया

दाने जो झर गए चुनेगी
अपने मन की कथा कहेगी
सीधी धूप-हवा से बातें
करने को वह रुकी रहेगी
हलवाहा के आते ही
उफनी जैसी नदिया

रोम-रोम आँखों से भर के
मौसम को तितली-सा करके
पंखों पर आकाश उठाये
खुद को धुनी रुई-सा धर के
मुख आकाश की ओर किये
ले उड़ी समय का पहिया

चिड़िया की आँखों में घर है
कहीं पठार, कहीं सागर है
ले-देकर इस धरती पर ही
इससे ही भरना गागर है
चिड़िया से ही धरती का सुख
सुख से उमग रहा है दरिया.

◆◆◆

भीतर-भीतर आग

भीतर-भीतर आग बहुत है
बाहर तो सन्नाटा है

सड़कें सिकुड़ गयी हैं भय से
देख खून की छापें
दहशत में डूबे हैं पत्ते
अंधकार भी काँपे
किसने है यह आग लगायी
जंगल किसने काटा है

घर तक पहुँचानेवाले वे
धमकाते हैं राहों में
जाने कब सींघा बज जाये
तीर चुभेंगे बाँहों में
कहने को है तेज रोशनी
कालिख को ही बाँटा है

कभी धूप ने कभी छाँव ने
छीनी है कोमलता
एक करोटनवाला गमला
रहा सदा ही जलता
खुशियोंवाले दिन पर लगता
लगा किसी का चाँटा है.

◆◆◆

गाँव नहीं छोड़ा

दरवाजे का आम-आँवला
घर का तुलसी चौरा
इसीलिए अम्मा ने अपना
गाँव नहीं छोड़ा

पैबन्दों को सिलते
मन से उदास होती
भैया के आने की खुशबू
भर से खुश होती
भाभी ने कितना समझाया
मान नहीं तोड़ा

कभी-कभी बजते घर में
घुँघरू-से पोती-पोते
छोटे-छोटे बँटे बताशे
हाथों के सुख होते
घर की खातिर लुटा दिया सब
रखा न कुछ थोड़ा

गहना बननेवाले दिन में
खेत खरीद लिये
बाबूजी के कहे हुए सब
सपने संग लिये
सह न सकी जब खूँटे पर से
गया बैल जोड़ा.

◆◆◆

सर्दियों के दिन

चिट्ठी की पाँती-से खुलने लगे हैं दिन
सर्दियाँ होने लगी हैं और कुछ कमसिन

दोहे जैसी लगतीं सुबहें
रुबाई-सी लिखी दुपहरी
खिलीं हवाएँ टहनी-टहनी
खिड़की के कंधे ठहरीं
चमक पुतलियों में फिर भरने लगे हैं दिन
टँके कुहासे जैसे नीले रिबनों पर पिन

कत्थई गेंदा पर ठहरी
खुशबू से दुहरी आँखें
हल्के मादल संग बजीं
चिड़ियों की उजली पाँखें
नदी में फिर कंचन-कलश भरने लगे हैं दिन
रखते हैं उजले छौनों-से पाँवों को गिन-गिन

लपेटकर सूतों से किरणों को
सहेजना जेबों में
मछली की रुनझुन बजती
पोखर के पाजेबों में
हाथ भर हल्दी सगुन करने लगे हैं दिन
साँझ होते आरती बनने लगे पल-छिन.

◆◆◆

ठहरी भोर

रोएँदार कुहासे-
आँखें झँपी-झँपी
सोनरायी पातों पर ठहरी भोर

प्राण से उलझे प्राण, झीलों भर हँसे गुलाब
उजले-काले हुए अँधेरे, भागे आहट दाब
नमी बेतहासे-
खुशबू कँपी-कँपी
कबूतर के पंखों पर ठहरी भोर

औंधे कजरौटे-सा आसमान, फटे आँचल-सी नदी
पथराए बरगद के नैन, ठहरी-सी कोई सदी
मौसम ने फेंके पाँसे
मछली छपी-छपी
बरफों के फूलों पर ठहरी भोर

ठण्डे लोहे-सा एकान्त, कनेरों-सी टुसियायी रात
सूरज ने छिड़के अबीर, दुहरे हैं कुहरी के गात
महकी हैं साँसें
सुधियाँ तपी-तपी
अलसायी पलकों पर ठहरी भोर.

◆◆◆

पत्थरों का शहर

यह शहर पत्थरों का, पत्थरों का शहर

टूटी हुई सुबह यहाँ, झुकी हुई शाम
जेलों से दफ्तर के शापित आराम
गाँठों-सी गलियों में भरी-भरी बदबू
साफ हवा की जगह पिएँ सभी जहर
पत्थरों का शहर

गोली में नींद यहाँ बिके खुलेआम
साँसों के कर्ज लिखे इच्छा के नाम
ताजा खबरों को जीते हैं यहाँ लोग
डूबती निगाहों में नुमांइशी लहर
पत्थरों का शहर

सिर्फ औपचारिकता है परिचय-प्रणाम
चाय पिला जोड़ें सब चीनी के दाम
अंधी दीवारों से टकरा निरुपाय
लँगड़े सुधारों के कपसते कहर
पत्थरों का शहर

◆◆◆

सोहर

धीरे-धीरे बहे पसीना
धीरे नदी बह रे
ललना रे, आधी रात गए
रनियाँ का मन कँहरे

इधर गजर का बोल
उधर मुनियाँ जनमे
ललना रे, आँखों रचे सरूप
कि हँसिया हाथ थमे
अगुआरे फूले गेंदा फूल
बीच-बीच अड़हुल रे
ललना रे, बेटी का भाग अमोल
बढ़े दो-दो कुल रे

सोते हो गई भोर
कि सपने आधे हुए
ललना रे, देख न पाए रूप
कुँवर दम साधे हुए
ढह जाये ऊँची मुँड़ेर
जले यह जंगल रे
ललना रे, जाय जहाँ यह राह
मिले अपना कल रे.

◆◆◆

महुआ के पेड़

चम्पा का पेड़ नहीं बाबा
महुआ के पेड़ उगाना

खाली हथेली औ' खाली चँगेरियाँ
चुभती हैं बहुत इन दिनों
माँ का सूना ललाट कहता है
पसीने की बूंद मत गिनो
जंगली सूअर ना आये
ऊँचा मचान एक बनाना

हाथों से होते हुए पेटों तक
बुना हुआ एक मंकड़जाला
तोड़ेंगे, छोड़ेंगे क्या ऐसे ही
बन्द पड़ा कब का यह ताला
कामगार बस्ती में खलता है
चौबारा खड़ा पुराना

टहनियों भर पेड़-तले झंडा एक
गाड़ेंगे, तोड़ेंगे अड़हुल के फूल
महुआ की छाँहों में कीर्त्तन की
धुन पर मिहनत को करेंगे कबूल
कहती है भूख-प्यास अपनी
मौसम के जंग छुड़ाना
महुआ के पेड़ लगाना.

◆◆◆

याद तुम्हारी

याद तुम्हारी जब भी आये
ऐसे आये
सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये

डोल रहा मन तेज हवा में
जैसे दूकानें टिन की
आँखों में आकाश टूटता
सड़कों पर स्याही दिन की
अपने ही घर के आगे गोली चल जाये
कटहल के पत्तों में दुबकी चिड़िया उड़ जाये

जरद किनारीदार पहनकर
साड़ी पूजाघर में
जैसे कोई माँ असीसती
बेटा कैद शहर में–
रायफलों के कुन्दों से ज्यों कुचला जाये
जैसे बागी देशभक्त कोई मर जाये

किसी तिलस्मी कथा सरीखे
आसंगों में बहके
तब तो ऐसा लगे कि फिर
कोई पलाश-वन दहके
मगर भूख-रोटी में जैसे महायुद्ध घिर आये
ऊँघ रहीं आँखों पर गर्म सलाखें भिड़ जाये.

◆◆◆

राजनीति का सलीब

काटेंगे खोत गई फरवरी
बीतेगी कैसे अब यह घड़ी
चलो, कहीं जा कीमत बूझें
हँसी और नींद हम खरीदें

चीजों के दाम जंगली
नदियों के शोर हो गए
रोशनियाँ बर्फ हो गईं
बादल कागज के कोर हो गए
सूखो और बाढ़ में गईं
नदियों की मछलियाँ खोजें

कच्चे ताम्बे के ताबीज
टूटे तो भरम खुल गए
पहली ओसौनी के बाद ही
हाथों के रंग धुल गए
पोस्टर पर स्याहियाँ भरीं
कागजी फसल तमाम सूझें

बचपन होता न अब इस देश में
होश नहीं और कंधे झुक गए
थकी-थकी आँखों में टूटते
हौसले अजाने ही दुख गए
राजनीति ने गढ़ी सलीब
टँगी हुई बहस, महज खीझें
हँसी और नींद हम खरीदें.

◆◆◆

सूर्यमुख शाम

धूप जब-जब तेज होती है
पसीने सर की जमीं को ही भिगोते हैं

बाध-वन में सुना जाता पक्षियों का शोर
बहेलिया हर बार आता शर लिये इस ओर
जब हवा के पंख खुलते हैं
काटकर चट्टान तब हम बीज बोते हैं

बंधकों में हँसुलियों के बहुत छूटे रंग
ठूँठ पर लटके हुए थे वायदों के अंग
अब मगर अहसास होता है
नया पाने के लिए हम बहुत खोते हैं

सही हमने बर्छियों की धार अपने सहज सीने पर
काटकर सर ले गए जो थे कभी रहबर
दाग दामन के सुलगते हैं
चेहरे जब और ज्यादा साफ होते हैं

मार सके नहीं हमें जब भूख और अकाल
कागजों की खेतियों से कर गए कंगाल
सूर्यमुख जब शाम होती है
कट गए लम्बे दमन के हाथ होते हैं.

◆◆◆

पेड़

इस तरह होते बड़े ये पेड़
नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़

टहनियों में दुख रहीं
नोंकें सवालों की
बज रही समवेत धुन
कलछी-कुदालों की
हो नहीं पाते हरे ये पेड़
जड़ों से बेहद कड़े ये पेड़

आज तक खाते रहे जो
दुधमुँहे हिस्से
चुभ रहे उनको उन्हीं के
दाँत के किस्से
खुद-ब-खुद उनसे लड़े ये पेड़

उगीं, हाँ, अब उगीं
किरणें रोटियोंवाली
साँझ दहशत में सनी
होगी नहीं काली
दीखते कितने बड़े ये पेड़
नहीं मरकर भी मरे ये पेड़.

◆◆◆

राजकुँअर का गीत

मिहनत करें, कमायें हम
फिर भी हम औने-पौने
राजा बाबू, तू जादूगर
तेरे चाँदी-सोने

ऊँचे-ऊँचे गुम्बद तेरे
ऊँची हैं मीनारें
तेरे कल-करखाने बुनते
ये ऊँची दीवारें
तेरे आगे तो लगते हैं
ये सूरज भी बौने

कागज पर छपकर आते हैं
तेरे रोज तमाशे
मेले में भी बजा रहे हो
बड़े जोर से ताशे
अँधियारे में डूबे हैं
अपने बीमार बिछौने

मिट्टी की धमनी से कढ़कर
आतीं जो आवाजें
देखो कहाँ-कहाँ पहुँची हैं
उनकी ये परवाजें
अपनी आँखें लग जाती तो
लगते नहीं दिठौने.

◆◆◆

रानी का गीत

रानी के पास हैं बहुत धन
हाथी-घोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े

रानी न खेत जाये, करे न सिंचाई
रानी की थाल में है खीर औ' मलाई
आग जो लगाये उनके हाथ
गोरे-गोरे

खटे न कभी मिल में, करे न कताई
रानी की देह पे है रेशमी रजाई
पीठ के निशान भी न गिने
उनके कोड़े

रानी के पाँव लगे नहीं धूल-छाई
रानी की भेंट चढ़ी हमारी कमाई
चान औ' सुरुज हाथ उन्हें
सभी जोड़ें

कौन कहे समय की भी होती है सिलाई
काटता है वही जो करता बोआई
कभी छोटी चिड़िया भी
बाज को मरोड़े
कौन है जो रानी के रथ को
पीछे मोड़े.

◆◆◆

रोटी का सवाल

रोटी हुई सवाल, भैया रोटी हुई सवाल

मिहनत करके भूखे रहना अपनी नियति हुई
उस पर यह बेकारी, जिनगी भीगी हुई रुई
दिन-पर-दिन होता जाता है अपना खस्ताहाल
बहिना, रोटी हुई सवाल

कंधे पर से नहीं उतरता, कभी करज का बोझ
तानाशाही के पुरजे को, अब तो लेंगे खोज
किन्तु महाजन हमें सताने लगता है हर साल
भैया, रोटी हुई सवाल

बोकर अपनी उमर खेत में हम क्यों जुल्म सहें
रोटी देनेवाले क्यों खुद को कमजोर कहें-
ऐसा कहनेवाला होगा कोई नया दलाल
बहिना, रोटी हुई सवाल

खूनी जबड़े तोड़ेंगे हम उनके कानूनों के
नया समाज गढ़ेंगे हम समता के मजमूनों से
हर मुश्किल पर दहक उठेगी अपनी लाल मशाल
भैया, रोटी हुई सवाल
बहिना, रोटी हुई सवाल.

◆◆◆

दाने कहाँ गए

बेटे बोलो, तेरे घर के
दाने कहाँ गए

एक कँटीली चारदीवारी
तेरे घर के पीछे
धुआँ उगलती रहती दाबे
सब कुछ अपने नीचे
धीरे फैले असर जहर के
दाने कहाँ गए

कैसे बेघर हुए घरों से
कैसे किया गुजारा
वासगीत भी गया करज में
मिली भूख की कारा
बाबू तेरे बिके शहर के
दाने कहाँ गए

कुछ तो लूटे अफसर-नेता
कुछ को साहूकारों ने
उससे ज्यादा पुलिस-कचहरी
बाकी चोर बजारों ने
खा न सके अब तक जी भरके
दाने कहाँ गए.

दिन-पर-दिन चर्बी बढ़ते
पेटों के ये रखवाले
खाते-खाते मरें, मगर
तेरे पेटों पर जाले
माँ की आँखें सहमे डर के
दाने कहाँ गए

आँखों में रोशनी नहीं
औ' बाँहें थकी हुईं
दस की भी तो नहीं उमर
यह लगती पकी हुई
पानी बहते रहे नहर के
दाने कहाँ गए

अंधी योजनाएँ कागज
के हैं पहाड़ बुनते
ये बच्चों के पेटों पर
हैं खड़े पहाड़ा गिनते
बेधो उनको कड़ी नजर से
दाने कहाँ गए.

◆◆◆

हौसले का गीत

फूले फूल कनेर
हौसला लेकर फूलो रे

इन हाथों से
लगातार हमने पत्थर तोड़े
तोड़ स्वयं को जाने कितने
प्रश्नों के मुँह मोड़े
उठते हुए
सवालों-से शाखों पर झूलो रे

बहते हुए
पसीने को हम तमगों-से पहनें
नहीं देखतीं आँखें अब
रेगिस्तानी सपने
जख्मों-से अब
रिसो नहीं, महुओं-से चू लो रे

हम मेहनतकश
हमें पता है आँधी-बंजर का
जंग छुड़ायेंगे अपने
सपनों के खंजर का
चलो, बढ़ो, जल उठो
लाल शिखरों को छू लो रे.

◆◆◆

थमो, सूरूज महाराज

थमो, सुरुज महाराज; नयन काजर भर लें
बोयें पिया पसीना, फसल सगुन कर लें

सूखी रोटी के दुख
हमने बरस जिये
तन का फटा अँगोछा
शीत न घाम सहे
बहो, हवा हे झिर-झिर, तनिक अरज कर लें
अबके उपज सोनमाटी, परब सब दुख हर लें

टूटे ऊपर छान
चान घर-बीच उगे
चमके हल की नोंक
करज-चिनगी सुलगे
गाओ, बाँकी पुरबा; फुहियों-से झर लें
भीगे सपने पात-पात दरपन भरमे

माथे लाल सिनूर
फूल ये अड़हुल के
अगुआरे-पिछुवारे फूले
अगन जलाये मिल के
सहो, चलो सब मिल, दुख को आँचर कर लें
दुहरे होते चलें पिया, ये रुत डर लें.

◆◆◆

हम मुठभेड़ हुए

थाली उतनी की उतनी ही
छोटी हो गई रोटी
कहती बूढ़ी दादी अपने गाँव की
सबसे बूढ़ी दादी अपने गाँव की

फेन-फूल-से उठे, मगर राखों के ढेर हुए
धँसे हुए आँखों के किस्से, हम मुठभेड़ हुए
भूख हुई अजगर-सी, सूखी
तनकी बोटी-बोटी
कहती बड़की काकी अपने गाँव की
सबसे सुन्नर काकी अपने गाँव की

अपना तो घर गिरा, दरोगा के घर नये उठे
हाथ और मुँह के रिश्ते में ऐसे रहे जुटे
सिर से पाँवों की दूरी अब
दिन-दिन होती छोटी
कहती नवकी भौजी अपने गाँव की
सबसे गोरी भौजी अपने गाँव की

करना होगा खत्म कर्ज, यह सूद उगाही, लहना
लापरवाह व्यवस्था के खूँटे से बँधकर रहना
नाम भूख का रोटी पर
जीतेगी अपनी गोटी
कहती रानी बहना अपने गाँव की
सबसे प्यारी बहना अपने गाँव की.

◆◆◆

बेटा माँगे चन्द्रमा

फटी हुई गंजी ना पहने
खाये बासी भात ना
बेटा मेरा रोये, माँगे
एक पूरा चन्द्रमा

पाटी पर यह सीख रहा है
लिखना ओ ना मा सी
अ से अपना, आ से आमद
धरती सारी माँ-सी
बाप को हल में जुता देखकर
सीखे होश सम्हालना

घट्ठे पड़े हुए हाथों का
प्यार बड़ा ही सच्चा
खोज रहा अपनी बस्ती में
दूध-नहाया बच्चा
बाप सरीखा उसको आता
नहीं भूख को टालना

अभी समय को खेतों में
पौधों-सा रोप रहा
आँखों में उठनेवाले
गुस्से को सोच रहा
रक्तहीन हुआ जाता
कैसे गोदी का पालना.

◆◆◆

मौसम हुआ कबीर

इतना साहस भरा हवा में
मौसम हुआ कबीर
देख नहीं पाता कि समय ने
खींची कहाँ लकीर

बूढ़ी दादी के संग हुई
पुरानी कथा महल की
राजकुँअर पत्थर
गरीब की बेटी काँच-कमल की
जलती झोंपड़ियों पर दिखे
ठहाके लिए अमीर

अपनी बदहाली का वे
उपहास बहुत करते
फिर भी मिहनत पर
मारे कुण्डलियाँ वे रहते
अपनी तो दौलत है अपना
सँवरा हुआ जमीर

नजरें ज्वालामुखी हुईं औ'
बाँहें तीर-कमान
सुनते हैं ललकार
समय की, महल हुए हैरान
हम आनेवाले कल, हमको
समझो नहीं फकीर.

◆◆◆

अपनी ताकत

भूख फेंकती खून और तू आग न बरसा रे
बेईमान मौसम क्यों मारे बरछी-फरसा रे

हाड़-तोड़ मिहनत करके भी
हम भूखे-के-भूखे
दिन-दिन हो निरुपाय रहे हम
पानी में भी सूखे
लागे देश-विदेश; नहीं कुछ अपने घर-सा रे

तड़क रही पसली में जैसे
डंक कई-से लागे
पता नहीं कैसे नवाब वे
हम होते हतभागे
चीख नहीं अब केवल, अपनी ताकत दरसा रे

हर मुँह मुहर लगे दाने की
आँख खुशी का पानी
आपस में मिल बढ़ें, कि टूटे
सत्ता की मनमानी
नई देश-दुनिया, शोषण जलता है डर-सा रे.

◆◆◆

आँधी चल रही है

फूटता सैलाब
आँधी चल रही है

हम लगे
पहचानने दुश्मन रगों को
और बेहतर जानने
बढ़ते पगों को
एक-सी है आग
आँधी चल रही है

खत्म होगी
रात, पिघलेगा अँधेरा
जुल्म सत्ता का नहीं
सहना दुबारा
सुलगता है दाग
आँधी चल रही है

फिर समय ऐसे अभी
तनकर हुआ तैयार
आग की बरखा, हुए
शोषक सभी लाचार
क्रांति का संवाद
आँधी चल रही है.

◆◆◆

गवाही मत देना

सत्ता करे सवाल, गवाही मत देना
अपना खस्ता हाल, गवाही मत देना

कैसे फसलें लुटीं खेत की
कैसे हाथ कटे
कैसे पेट हुए पीठों-से
कैसे लहू घटे
हर दिन हुआ अकाल, पड़ा कैसे तपना
भूखा-नंगा लाल, हुआ सब दिन मरना

कोरे बचपन सुनी कहानी
तरुणाई तक आयी
वहशी ताकत की चोटों से
धमनी भी गरमायी
उनकी दुहरी चाल, नहीं उसमें फँसना
बना हमें कंगाल, उन्हें आता हँसना

अब जब खुली जुबान
सहेंगे नहीं दुखों को
हुई लड़ाई तेज चले
दस्ते लड़ने को
किसकी हुई मजाल, हमें रोके बढ़ना
हों गरीब खुशहाल, यही अपना सपना.

◆◆◆

भूखों नहीं मरेंगे

बन्दोबस्त हुआ अच्छा अब
भूखों नहीं मरेंगे लोग
अपने ही सपनों को खाकर
अपना पेट भरेंगे लोग

घर के सर्द हुए चूल्हे तो इससे क्या बदहाल हुए
राजकुँअर की अगवानी में कितने मालामाल हुए
पानी की कीमत पूछेंगे
प्यासे नहीं मरेंगे लोग
पूँछ उठाये मछली जैसे
खुद से जिक्र करेंगे लोग

इससे क्या आग की धमकी मिली आज झोपड़ियों को
बात-बात में करें उतारा हम आँखों में परियों को
कागज के दस्तावेजों से
अपनी उमर गढ़ेंगे लोग
पत्थर पर भी खुदी रोटियों
की खातिर ललचेंगे लोग

कच्चे घर से वर्षा में भी तने हुए जो हाथ यहाँ
खुशियों की खातिर वे कब से जूझ रहे हैं यहाँ-वहाँ
बेजुबान इस बस्ती को अब
पूरा मुखर करेंगे लोग
खुशियों को काले पानी से
वापस वही करेंगे लोग.

◆◆◆

आँखों का सपना

टूटा ही है घर वह
पर, कितना अपना है

हाथों रोक लिया करते
छानों से चूता पानी
कभी नहीं सर्दी-गर्मी से
हुई हमें हैरानी
दो जोड़ी आँखों में
एक हरा सपना है

ऊँचा डीह लिये पूरा
करते थे महाजनों को
नदी, झील, झरनों जैसे
अपने भाई-बहनों को
फसलों की देहों में
दानों का तपना है

थाम हाथ से पेट भूख की
तनी कमानें होंगी
धानों की ढेरी-सी बच्चों
की मुस्कानें होंगी
खोटी नीयतवालों को
भय से हरदम कँपना है.

◆◆◆

खुशियों का ताबीज

सुबह हुई आँगन में गमकी
धूप किसी पकवान-सी

घट्ठे पड़े हुए हाथों से
पकड़ हथौड़े की
गढ़ती है औजार
गढ़े जो मूरत रोड़े की
खुशियों का तावीज गले में
बच्चों की मुस्कान-सी

सिर पर बोझ सम्हाल फसल का
नये समय को रचता
मुट्ठी बन्द इरादों में है
मुक्त भविष्यत बजता
हाथ बाँधकर भूख भगी है
खिड़की खुली दलान-सी

केवल बाग नहीं फूलेंगे
खुशगवार पल भर होगा
अपनी सधी निगाहों में
सुख समता का अक्षर होगा
गूजेंगे चौराहे, गलियाँ
होंगी मंगल गान-सी.

◆◆◆

नहीं माँगना भीख

तेरे लिए यह सीख
राजा भइया
लड़ना अधिकारों की खातिर
नहीं माँगना भीख
राजा भइया

हर सवाल का जवाब इन्कलाब है
रोटी हमारी अब नहीं ख्वाब है
शोषण औ' जुल्म की लिखी किताब है
लहू जाये पन्नों पर दीख
राजा भइया

अब तक जैसे हमारे दादे-परदादे
पूरा-पूरा होकर भी लगते आधे-आधे
रोटी की नीलामी पर भी रहे मौन साधे
कई-कई विदेहों के सरीख
राजा भइया

फाड़ेंगे हम पहले शोषण के दस्तावेज
खानों या खलिहानों से नहीं हमें परहेज
अधिकारों की खातिर होगी अभी लड़ाई तेज
कभी नहीं छपेगी अब चीख
राजा भइया.

◆◆◆

काँट के वन

बिंधीं फूल की लाल पँखुड़ियाँ
काँट के वन में

भूख लिए रोटी के सपने
झुकी हुई पेटों पर अपने
पाँखें खुजलाती हैं चिड़िया
काँट के वन में

जहाँ-तहाँ बबूल-वन फूले
उड़े धूल के बड़े बगूले
रेत हुई जलहीन मछलियाँ
काँट के वन में

खिला खेत में खून-पसीना
फल की आस लिए यह जीना
तड़क रहीं कमजोर पसलियाँ
काँट के वन में

हाथों को मशीन-सा करके
बच्चों की हँसियों में भरके
सुबह उगी ज्यों लाल बिजलियाँ
काँट के वन में.

◆◆◆

भात के सपने

भर-भर थाल भात के सपने
पेट नहीं बासी है
घर में पूरनमासी है

तीन बरस के बाद सिला कुरता एकरंगा
जाने कितना बचपन तब बीता अधनंगा
नए धान की गमक नाक में
ले गई उदासी है

इसी बार हाथ वे हैं पैबन्द नहीं टाँके
लाल फूलवाली साड़ी के रंग बड़े बाँके
हाट खरीदी टह-टह लहठी
कस रही जरा-सी है

हाथों पर उग रही मेंड़, फसलों के नक्शे
नयी धूप के साथ बदलते मौसम जब से
बच्चों की मुस्कान नहाया
बरस बेरासी है

पातझोल खेलेंगे मिल-जुल अमराई में
सूखे-बाढ़ न होंगे अब फसल कटाई में
घर-घर बजे कबीरा अँगना
मीरा हाँसी है
घर में पूरनमासी है.

◆◆◆

हल-सी जिन्दगी

आ गये
काली अँधियों के दायरे में हम
खेत में जलती फसल-सी जिन्दगी

फसल जैसे आईना हो
निरखते थे रूप
बाँह में हरियालियाँ पहने
पकड़ते थे धूप
फूल की खुशबू कहाँ कुम्हला गयी
रेत में धँसते कमल-सी जिन्दगी

दहशतों की नींद में सोयी
हर गली, हर मोड़
देर कुछ जीकर मरा है
रोशनी का मोर
छू गया हो पाँव जैसे आग से
धुँआ, कुहरा, रेत, छल-सी जिन्दगी

वे भी दिन थे रंग पढ़कर
बताते थे नाम
अब हमारे हाथ को कंधे
नहीं हर शाम
भूत जैसे पेड़, पोखर, बस्तियाँ
बैल बिन बेकार हल-सी जिन्दगी.

◆◆◆

हमें खराब लगे

अपने सभी रवैये बदलो
हमें खराब लगे
यह नकली अनुशासन बदलो
हमें खराब लगे

भूखों की आँखों में देकर
रोटी के सपने
और सवालों के जंगल को
धुआँ-धुआँ करने
अपने चोर इरादे बदलो
हमें खराब लगे

हाथ बढ़ाकर माँग रहे
अपने अधिकारों को
राहों की गर्दों में ढलते
सुन्दर आकारों को
सीने को पत्थर में बदलो
हमें खराब लगे

राहों की खुरदुरी जिल्द में
जब हम बँध जाते
जलते हुए सवाल हमें
भीतर से सुलगाते
इस बदशक्ल वक्त को बदलो
हमें खराब लगे.

◆◆◆

बूने इरादे

फसलें हैं कटती गईं
बाध-वन सूने लगते

अपने हाथों की छुअन
अभी जीवित रेहों में
खेतों में ही नहीं फसल
कटती रहती देहों में
ठनकते बोल हवा में
सकल सुख दूने लगते

नहीं अकेले थे हम
पूरा घर खेत बना था
कितना उत्साह भरा मन
वैसे तो रेत बना था
दीखते महाजनों के
आग मन छूने लगते

गोदामों में अन्न सड़ें
पेटों में पड़ते जाले
द्वारे हैं फूले कदम्ब
अपनी आँखों पर ताले
आग भरी मुट्ठियों से
इरादे बूने लगते.

◆◆◆

माँ का सपना

माँ, तेरी बड़ी-बड़ी आँखों ने
देखा एक बड़ा सपना

तेरा बेटा धरती की
बेड़ियाँ जलायेगा
लाखों भूखे-नंगों का
घरबार बसायेगा
जम गया स्वप्न उन आँखों में
मन को मत छोटा करना

छिल गये बदन उसके
इन लौह-सीकड़ों में
यहीं जनम लेंगे उनसे
फौलाद सैंकड़ों में
इतिहास रचेगा आँखों में
फूल, आगवाला झरना-

फैल गया तूफान, अरे
पत्तों के जंगल में
होगी जिन्दगी समान
इन्हीं आनेवाले कल में
तुम तपो कि भर लो आँखों में
धरती का पूरा सपना.

◆◆◆

कटाई का गीत

दिन आये फसल कटाई के
बड़का की सुघर कमाई के

बेटी आई घर महक उठा
आँचल में हल्दी-धान लिए
छोटे के भाग-विहाग हुए
बाजू में तीर-कमान लिए
दिन काटे परवत-राई के
फटते कुरते में भाई के

भौजी के माथ सिनूर लाल
आतप में रक्त पलाश खिले
जंगल में जलती आग दिखे
असमान किनारे ढहे किले
भरते हैं घाव बिवाई के
किस्से ये दूध-मलाई के

भात मिले भर-भर थाली
बच्चों की खुशी आकाश लगी
पपड़ाये होंठों पर जैसे
विरहा-कजरी की प्यास जगी
अपने मिहनती सिपाही के
ये हिस्से कड़ी लड़ाई के.

◆◆◆

बहती नदी

यह नदी बही है सदियों से
सदियों तक बहती जायेगी
अपनी मेहनतकश बाँहों से
धरती का बोझ उठायेगी

भूखी-प्यासी रहना
इसकी आदत नहीं हुई
कभी जोर-जुल्म की दहशत
इसने नहीं सही
रक्षा-कवच स्वयं पहने
जनम लेती ही जायेगी

कोई कभी जो
इसकी राहों में आयेगा
अपनी तानाशाह नीति की
आँखें दिखलायेगा
शत-सहस्त्र धारों में
अग्निमुखी बन जायेगी

बच्चों की मुस्कान
समेटे अपनी लहर-लहर में
शोषणहीन समाज बने हर
कस्बा-गाँव-शहर में
पूरा हो जब तक लक्ष्य
युद्ध लड़ती ही जायेगी.

◆◆◆

कमीने मौसम

मौसम बड़े कमीने
शाखों पर फूलों को देते
नहीं कभी ये जीने

जिस मिट्टी को चंदन-सा
हम भालों पर रच लेते
देख उसे टेढ़ी नजरों से
उसका सुख हर लेते
पानी-पानी हुई हवा, सूरज
भी दुख से भीने

पेट बाँध चिड़िया सोती
सड़ते जाते हैं दाने
सपने गढ़ते-से हाथों में
जैसे ताल-मखाने
मेहनतकश हाथों का कैसे
खून लगे ये पीने

बुझे हुए चेहरों की भाषा
कभी नहीं पढ़ पाते
नीले जल के तालों पर
सौ-सौ बारूद बिछाते
सुर्ख सुबह यह मगर नहीं
बेचेगी लाल पसीने.

◆◆◆

बाढ़ की कथा

गेहूँ की बालियाँ गिने
कहें गयी बाढ़ की कथा

कैसे करमी खाकर दुखनी ने
जीवन के सात दिन गुजारे
रजुआ की देह थर-थर काँपी
फटे अँगोछा के सहारे
जुते, बुने और अधबुने
लिखी हुई खेत की व्यथा

सींचे थे जिससे हमने
पानी नहीं, थे वे पसीने
रोम-रोम होकर वे फूटे थे
जीवन के कीमती नगीने
सूदखोर इस तरह तने
जैसे सब उनका ही था

अपना तो सब कुछ गिरवी में
बच्चों के दूध, नींद, सुबहें
बाबू की धँसी हुई आँखों की
कसमों को बाँधकर कहें
समय के पैगाम को सुनें
बदलें यह स्याह व्यवस्था.

◆◆◆

बाँटो तू चिनगी

सड़कों पर बनते जुलूस, देखूँ जब मेरे बेटे
लगता एक गलत आजादी, तेरे हाथ लगी

मिहनत तेरी नये सिरे से
इस मिट्टी को बुनती
धरती के रेशे-रेशे को
ताकत देकर रचती
अगहन हो या पूस, हाथ कटते जब तेरे बेटे
काली आँधी में फौलादी, आग नयी सुलगी

पूरा एक वसंत उठी
बाँहों में खिलती है
कई भूमिगत आगों में
संकल्प निखर चलता है
बने बहुत फानूस, होश में आओ मेरे बेटे
देखो सिर पर लिए मुनादी, पेड़ों की फुनगी

रोप समय पौधे-सा तू
इंतजार है करता
स्याह व्यवस्था को अपने
मासूम खून से रंगता
दहके लाल बुरूश, दहकना तू भी मेरे बेटे
हवा घूमती बन शहजादी, बाँटो तू चिनगी.

◆◆◆

जंगल के कानून

पहले तेरी कुरसी पर हम फूल चढ़ाते थे
अब तेरी कुरसी पर हम बारूद बिछा देंगे

सारे-के-सारे इतिहास
निगलकर जनता के
भात बचाए तूने अपने
मिलकर सत्ता से
पहले अपने कर्जे में हम जान गँवाते थे
अब कर्जे की खातिर तेरी जान वसूलेंगे

हवा और पानी जैसे
पेटों पर अंकुश तेरे
तेरे महलों में रोशनियाँ
जलतीं साँझ-सवेरे
पहले बोझा ढोकर अपनी रीढ़ झुकाते थे
अब तेरी रीढ़ों पर अपना जोर लगा देंगे

फर्क बढ़ाती गई गरीबी
और मुनाफाखोरी
जंगल के कानून सजाये
तेरी स्याह तिजोरी
पहले शोषण की अन्धी घाटी में बहकाते थे
अब शोषण के मन्सूबों को खाक बना देंगे.

◆◆◆

क्रान्ति के बीज

नहीं चाहिए आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात
हम गरीब मजदूर भले
हम किसान मजबूर भले
पर, अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नयी बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

कच्चे गीतों से अच्छा है नारा एक लिखो
बंधे हुए द्वीपों से बेहतर धारा एक दिखो
लेकर श्रम का नाम चले
लाल मशालें थाम चले
हाथ-हाथ मिल रोशनियों का तीज मनायेंगे

टुकड़े-टुकड़े जुड़े मगर पैबन्द नहीं होंगे
जो बादल गरजे भर, वह अनुबंध नहीं होंगे
खाई खन्दक पाँव-तले
कट जायेंगे क्यों न गले
तिलक पसीने का रचकर हम जोत जगायेंगे

अब बहसों को छोड़ो साथी, भाग्य नया बदलें
नये सूर्य के स्वागत में फसलों-से हम झुक लें
जोर-जुल्म अब बहुत खले
आग हथेली पर रच ले
देखें सब दमखम वैसा संगठन बनायेंगे
ताकत नयी बटोर-क्रांति के बीज उगायेंगे.

◆◆◆

लोहे का गीत

हम लोहे
लोहों के गीत लिखेंगे
मिहनत को भालों पर
स्वयं रचेंगे

बन्द दया की भीख आज से
बन्धक, बेगारी
तोड़-फोड़कर रख देंगे
अब कमजोरी, लाचारी
खलिहानों
फसलों से गाँव लिखेंगे

ये इतने चुपचाप दीखनेवाले
हल के जोड़े
कहते सीना तान
नदी उनकी जो परबत फोड़े
पेट पीठ से मिले नहीं अब
यही लिखेंगे

बैठ रहे कुण्डली मारकर
जो सबकी भूखों पर
चाभी के गुच्छे
टूटेंगे उनके झूठ दुखों पर
हम अपने घरबार
क्रांति के नाम लिखेंगे.

◆◆◆

पंख-पंख आसमान

कानों में गूँजती नदी
आँखों में पंख-पंख आसमान

साँस में हवाओं की
दुखतीं तारीखें
गुजर रहे हद से यह
पानी तो दीखे
बोझ अभी ढो रही सदी
भीतर टूटता भीत का मकान

चिड़िया की आँखों में
धूपों के तिनके
तेजधार दुपहर में
हुए नहीं इनके
सामने पहाड़ त्रासदी
सुलगते हैं पिछले कई निशान

शंख बने मछली के
बिम्ब को लिये
गीत गूँजते जो
गाये नहीं गये
समय मंत्र-विद्ध द्रौपदी
थोड़ी-सी-हँसी, ढेर सी थकान.

◆◆◆

धूप के किस्से

बहुत खुश हूँ
खुश बहुत हूँ
हाल अपना लिखो
क्या हुआ कल रात आयी
जोर की आँधी
नींबुओं की पत्तियाँ फिर
रात भर जागीं
समय कम है
कम समय है
हर मुहिम पर दिखो
एक गमला करोटन का
ले गया कोई
अँधेरे में पत्थरों को
बो गया कोई
तेजकर उड़ानों को
उड़ानों को तेजकर
धीरज रखो
अलग मत करना कभी
इस कठिन दिन को
छाँह में भी धूप के किस्से
कहो मन को
खेत में फसलों सी
फसलों सी खेत में
दिन-दिन पको.

◆◆◆

हँसियों का झरना

सहमे-सहमे पत्ते डोले
चिड़ियों की पाँखों को खोले
हवा उधर से बहती जाना
खुशबू के आखर लिख आना

नींदों में बतियाती पलकें
ओठों के संगम पर चलके
टुकड़े जोड़ रही दिन भर की
बातों में जी का दिख जाना

पूरे दिन की थकी हुई-सी
मूँगों जैसी टँकी हुई-सी
हँसियों का झरना बह जाना
अपना सुन्दर घर भर जाना

बहुत दिनों पर बेटी जैसी
घर आई हो खुशी भली-सी
इस दिन को सौ जनम बनाना
सुख को साँसों में रख जाना.

◆◆◆

बाँह में आकाश

यह सदी रोने न देगी
सच कहा तुमने

हँसी होगी शाप
पथरा जायेंगी आँखें
ओठ होंगे काठ
कटने लगेंगी शाखें
सच कभी होने न देगी
धूप के सपने

बाँह में आकाश होगा
कटे होंगे पंख
मछलियाँ जलहीन
तट पर बिछे होंगे शंख
पास में बहने न देगी
नदी या झरने

थके होंगे शब्द
ढोते अर्थ दुहरे
प्यास को दीखा करेंगे
जल सुनहरे
प्रिय कभी होने न देगी
खुशी के गहने.

◆◆◆

नदियाँ इंगुर की

इतनी सर्द हवाओं में भी
खुशबू का अहसास
अपना कोई प्यारा जैसे
इस पल अपने पास

इंगुर की नदियाँ बहतीं हों
मन में आँखों में
प्यार बाँधकर उड़ती चिड़िया
नीली पाँखों में
हरियाली का दर्पण दीखा
'आनन ओप उजास'

इतने यतन जुगाये तब से
भीतर के अंकुर को
छाया वह छतनार समेटेगी
पीले पतझड़ को
मैले कभी न होंगे वन के
रंगारंग पलास

धूपों से तितलियाँ बनाकर
उड़ते संग हवा के
क्षण वे फिर आते हैं चुपके
धीरे पाँव दबा के
भरी नींद में सपनाते हैं
वन के आक-जवास.

◆◆◆

दिन आये

दिन कैसे-कैसे आये
दिन आये

रंगों का पुड़िया उड़ा हवा लाल हुई
बादल की देह यों लगी गुलाल हुई
दुख के अँखुवे पल में मुरझाये
दिन आये

दूब ने कनखियों से क्या देखा
खिंची हुई भाल पर सगुन रेखा
गाँव के सीवान लाँघ आये
दिन आये
नदी-घाट सूखते–अँगोछे
धूपों ने लहर के
मुँह पोछे
कहा धीरे, लो जी ! हम आये
दिन आये
हाथों से हाथों की दूरी
भली रही यह भी मजबूरी
साँस पर पहाड़ उठा लाये
दिन आये

◆◆◆

हँसी तुम्हारी

अपनी अनुपस्थिति में भी
तुम इतने पास लगी
जैसे कोई शुआ अकेली
देहरी-बीच उगी

जबसे बसने लगीं आँख में
हैं वे निश्छल आँखें
आठों पहर वसन्त-झुकी
रहती कोंपल की शाखें
पुरइन के पत्तों पर झलमल
ढलकी बूँद जगी

जितने हों सुकुमार पूस
वाली धूपों के तिनके
जैसे हिरनी रखे पाँव
जल में अपने गिन-गिन के
रेघ तुम्हारे हाथों की है
अपने रंग रंगी

सम्बंधों के अर्थ तुम्हारे
होने से होते हैं
रहकर तुमसे दूर सही
हम कितना खोते हैं
धो देती मन हँसी तुम्हारी
करुणा-नेह-पगी.

◆◆◆

हवा आजकल

चिड़िया की आँखों में नींद नहीं
पेड़ों के पत्तों में भी हलचल कम है
कोई बात छिपी है फूलों के मन में
साँसों में अब नहीं उतरता मौसम है

दुखती हैं टहनी की बाँहें
जड़ से दिन भर बतियाती है
हालचाल भी नहीं पूछने
हवा आजकल घर आती है
आँसू के दाग गाल पर अब भी नम हैं

साँझ उदासी भरने लगती
हरियाये नीम-बबूलों में
पल भर धूप खेलकर आती
पोखर पर जब भी धूलों में
वह हँसी होंठ पर आकर जाती जम है

मंजर से ही झुकी डालियाँ
थीं उस-उस पिछले फागुन में
भरा लिफाफा लिये पड़ोसी
आया था बुहरे आँगन में
अब तो इन बातों से ही होता गम है
साँसों में अब नहीं उतरता मौसम है.

◆◆◆

हरियाली की पाँख

केवल दाना नहीं, नीड़ भी बहुत जरूरी है
फिर से यही फैसला है
चिड़ियों की संसद में

कमने लगीं हवायें
अब आकाश हुआ छोटा
दौड़ती हुई मिसाइलों का है
बँधा हुआ क़ोटा
फिर भी अँजुरी भर प्यार बाँटना बहुत जरूरी है
कोंपल-सा उगा हौसला है
अपने बढ़ते कद में

बाध-बधार खेत सब जैसे
सहमी आँख लिये
पेड़ों के पत्तों की हरियाली
की पाँख सिये
कुम्हलाये स्वर में धार जगाना बहुत जरूरी है
कुछ बेतरतीब सिलसिला है
रचते मीठे पद में

गूँजे श्रम के गीत उठे–
फिर बिरहा की तानें
मौसम की धड़कन में जागे
सोये सुख पहिचाने
मुस्कानों की थाप थिरकना बहुत जरूरी है
अँधियारों का ढहा किला है
सोया था जो मद में.

◆◆◆

मछली की तितलियाँ

घर भी वही, काम उतने ही
फिर भी वही नहीं
कहीं नहीं रमता मन
लगता कुछ भी कहीं नहीं

बिखरी हैं रंगीन पेन्सिलें–
कागज यहाँ-वहाँ
देती हुई गवाही कुछ दिन
रहकर गई यहाँ
सिमटा है संसार रेख में
ये अधबनी नहीं

देहरी और दलान झरे
केसर तेरी बातों के
परदों या कि किताबों पर हैं
दाग तेरे हाथों के
खुशबू से भी अधिक गमकती
ममता नेह-सनी

कहीं आँख तो कान गायब हैं
मछली बनी तितलियाँ
धूप और बादल को संग-संग
लिखती हुई उंगलियाँ
घरमें सुख को छींट गयी है
दो आँखों की कनी.

◆◆◆

शान्ति सुमन छायावाद की महीयसी महादेवी से न मुठभेड़ करती हैं और न उनके चरण-चिन्हों का अनुसरण ही, पर कोई चाहे तो सुभद्रा कुमारी चौहान की अगली कड़ी के रूप में उनकी जन-सम्बद्धता परख सकता है । खास बात यह है कि उनके गीतकार की जड़ें मिथिला में हैं । उनके गीतों में जयदेव भी हैं, विद्यापति और शुरूआती दौड़ के नागार्जुन भी । महादेवी के प्रगीत कल्पना-समृद्ध हैं, वे कलागीत के शिखर हैं, परन्तु उनका कोई जनपदीय आधार नहीं है । उनमें जैसे कोई मनोरम स्त्री शरीर नहीं, वैसे ही उनका कोई व्यवस्थित भूगोल भी नहीं, हर साँस का इतिहास लिखने के दावे के बावजूद । जबकि शान्ति सुमन के गीतों में मिथिला को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है । मैथिल संस्कृति के वे सारे उपकरण जो नागार्जुन की कविता को अमरता देनेवाले हैं, बड़े शालीन तरीके से शान्ति सुमन के गीतों में भी सक्रिय हैं ।

—डॉ० रेवतीरमण

शान्ति सुमन

मूल नाम- शान्ति लता
जन्म- 15 सितम्बर 1942
जन्म स्थान- कासीमपुर, जिला-सहर्षा, उत्तर बिहार
शिक्षा- एम॰ ए॰, पीएच॰ डी॰

कृतियाँ - गीत - संग्रह :
ओ प्रतीक्षित, परछाई टूटती, सुलगते पसीने,
पसीने के रिश्ते, मौसम हुआ कबीर, तप रहे कँचनार,
भीतर-भीतर आग, मेघ इन्द्रनील(मैथिली),
नदी का हँसना (प्रकाश्य),
समय चेतावनी नहीं देता (कविता-संग्रह)

उपन्यास-जल झुका हिरन

आलोचना-मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य

सम्पादन- सर्जना, अन्यथा, भारतीय साहित्य, कन्टेम्परारी इन्डियन लिटरेचर (दिल्ली), बीज (पटना) देश की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में रचनायें प्रकाशित एवं अनेक आकाशवाणी तथा दूरदर्शन-केन्द्रों से प्रसारित। गणतंत्र की पूर्व संध्या पर सर्वभाषा कवि-सम्मेलन(दिल्ली) में तमिल कविता का हिन्दी में अनुवाद-पाठ।

सम्मान एवं पुरस्कार- बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से साहित्य सेवा-सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से कविरत्न सम्मान, बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा 'महादेवी वर्मा सम्मान' से सम्मानित एवं पुरस्कृत। अवन्तिका (दिल्ली) द्वारा विशिष्ट साहित्य-सम्मान, मैथिली साहित्य परिषद से विद्या वाचस्पति का सम्मान, हिन्दी प्रगति समिति द्वारा भारतेन्दु सम्मान, नारी सशक्तीकरण के उपलक्ष्य में सुरंगमा-सम्मान, विन्ध्यप्रदेश का साहित्य मणि सम्मान आदि।

सम्प्रति- अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, महन्त दर्शनदास महिला महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सम्पर्क- 'ईशान'/ मीठनपुरा, क्लब रोड (वी॰ सी॰ गली), रमना, मुजफ्फरपुर-842002
दूरभाष- 0621/2270895, मो॰-3105530

अभिधा प्रकाशन